Chapter तीन

यमराज द्वारा अपने दूतों को आदेश

जैसाकि इस अध्याय में बतलाया गया है, यमदूत यमराज के पास पहुँचे तो यमराज ने विस्तार से भागवत धर्म अर्थात् भक्ति के धार्मिक नियमों की व्याख्या की। इस तरह यमराज ने उन यमदूतों को संतुष्ट किया जो अत्यधिक निराश हो गए थे। यमराज ने कहा, ''यद्यपि अजामिल अपने पुत्र को पुकार रहा था, किन्तु उसने भगवान् नारायण के नाम का उच्चारण किया और नामोच्चारण की झलक मात्र से उसे विष्णुदूतों की तुरन्त ही संगति मिल गई जिन्होंने उसे तुम्हारे द्वारा बन्दी बनाये जाने के प्रयास से बचा लिया। यह बिल्कुल ठीक है। यह तथ्य है कि दृढ़ पापी व्यक्ति भी यदि

भगवन्नाम का उच्चारण करता है, तो वह भले ही पूरी तरह अपराध से रहित न हो, दूसरा भौतिक जन्म नहीं लेता।''

भगवान् का नामोच्चार करने से अजामिल को विष्णु के चार दूत मिले। वे अति सुन्दर थे और तुरन्त ही उसे बचाने आये थे। अब यमराज उनका वर्णन करते हैं, ''ये सभी विष्णुदूत उन भगवान् के शुद्ध भक्त होते हैं, जो इस विराट जगत के सृजन, पालन तथा संहार से सम्बन्धित परम पुरुष हैं। उन परमेश्वर के कार्यकलापों को जो आत्मनिर्भर हैं और भौतिक इन्द्रियों की पहुँच के बाहर हैं न तो राजा इन्द्र, वरुण, शिव, ब्रह्मा, सप्तर्षि न ही मैं समझ सकता हूँ। भौतिक इन्द्रियों के द्वारा उनके विषय में किसी को ज्ञान नहीं मिल सकता। मायापति भगवान् में हर एक सौभाग्य के दिव्य गुण पाये जाते हैं और उस दृष्टि से उनके भक्त भी योग्य होते हैं। जो भक्त पतितात्माओं को इस जगत से बचाने के विषय में ही चिन्तित रहते हैं, वे बद्धात्माओं को बचाने के लिए विभिन्न स्थानों में जन्म लेते हैं। यदि कोई आध्यात्मिक जीवन में किंचित् रुचि रखता है, तो भगवद्भक्त कई तरह से उसकी रक्षा करते हैं।''

यमराज ने आगे कहा, ''सनातन धर्म का सार अतीव गुह्य है। भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई इस गुह्य धर्म प्रणाली को मानव-समाज को नहीं दे सकता। यह तो भगवान् की कृपा है कि उनके शुद्ध भक्त दिव्य धर्म-प्रणाली को समझ सकते हैं। इन भक्तों में विशेषतया बारह *महाजन* हैं—ब्रह्मा, नारद मुनि, शिव, चारों कुमार, कपिल, मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, बलि, शुकदेव गोस्वामी तथा मैं। जैमिनि के नेतृत्व अन्य विद्वान पंडित इत्यादि प्राय: माया द्वारा प्रच्छन्न रहते हैं इसलिए वे त्रयी कहे जाने वाले तीनों वेदों—ऋग, यजुर् तथा साम की अलंकारमयी भाषा के प्रति न्यूनाधिक आकृष्ट होते हैं। इन तीनों वेदों के अलंकारमय शब्दों द्वारा मोहित लोग शुद्ध भक्त बनने के बजाय वैदिक कर्मकाण्डों में रुचि दिखलाते हैं। वे भगवन्नाम-कीर्तन की महिमा को नहीं समझ सकते। किन्तु बुद्धिमान लोग भगवान् की भक्ति ग्रहण करते हैं। जब वे निरपराध भगवन्नाम का कीर्तन करते हैं, तो वे मेरे आदेशों के अधीन नहीं रहते। यदि संयोगवश वे कोई पापकर्म करते भी हैं, तो

वे भगवन्नाम के द्वारा रक्षित होते हैं, क्योंकि इसी में उनका स्वार्थ है। भगवान् के चारों अस्त्र, विशेषतया गदा तथा सुदर्शन चक्र, भक्तों की सदा रक्षा करते हैं। जो छल-कपट से रहित होकर भगवन्नाम का कीर्तन , श्रवण या स्मरण करता है, या जो भगवान् की स्तुति करता है, या उन्हें नमस्कार करता है, वह सिद्ध बन जाता है, जबकि भक्तिविहीन विद्वान व्यक्ति भी नरक में बुलाया जा सकता है।''

जब यमराज भगवान् तथा उनके भक्तों की महिमा का इस प्रकार वर्णन कर चुके तो शुकदेव गोस्वामी ने नाम-जप की शक्ति तथा प्रायश्चित्त के लिए वैदिक कर्मकाण्ड एवं पुण्यकर्म करने की व्यर्थता के विषय में आगे व्याख्या की।

श्रीराजोवाच
निशम्य देवः स्वभटोपवर्णितं
प्रत्याह किं तानपि धर्मराजः ।
एवं हताज्ञो विहतान्मुरारे-
र्नैदेशिकैर्यस्य वशे जनोऽयम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने कहा; निशम्य—सुनकर; देवः—यमराज; स्व-भट—अपने सेवकों का; उपवर्णितम्—कथन; प्रत्याह—उत्तर दिया; किम्—क्या; तान्—उनको; अपि—भी; धर्म-राजः—यमराज, जो मृत्यु के अधीक्षक तथा धार्मिक एवं अधार्मिक कार्यों के निर्णायक हैं; एवम्—इस प्रकार; हत-आज्ञः—जिनका आदेश व्यर्थ हो चुका था; विहतान्—जो पराजित किये गये थे; मुरारेः नैदेशिकैः—मुरारी अर्थात् कृष्ण के दूतों द्वारा; यस्य—जिसके; वशे—अधीन; जनः अयम्—संसार के सारे लोग।

राजा परीक्षित ने कहा : हे प्रभु, हे शुकदेव गोस्वामी! यमराज सारे जीवों के धार्मिक तथा अधार्मिक कार्यों के नियंत्रक हैं, लेकिन उनका आदेश व्यर्थ कर दिया गया है। जब उनके सेवकों अर्थात् यमदूतों ने उनसे विष्णुदूतों द्वारा अपनी पराजय की जानकारी दी जिन्होंने उन्हें अजामिल को बन्दी बनाने से रोका था, तो यमराज ने क्या उत्तर दिया?

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि यद्यपि यमदूतों के कथन वैदिक सिद्धान्तों के द्वारा पूर्णतया अनुमोदित थे, किन्तु विष्णुदूतों के कथन विजयी रहे। इसकी पुष्टि स्वयं

यमराज ने की।

यमस्य देवस्य न दण्डभङ्गः
कुतश्चनर्षे श्रुतपूर्व आसीत् ।
एतन्मुने वृश्चति लोकसंशयं
न हि त्वदन्य इति मे विनिश्चितम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

यमस्य—यमराज का; देवस्य—न्याय के अधिकारी देवता; न—नहीं; दण्ड-भङ्गः—आदेश का तोड़ा जाना; कुतश्चन—कहीं से भी; ऋषे—हे ऋषि; श्रुत-पूर्वः—पहले सुना हुआ; आसीत्—था; एतत्—यह; मुने—हे मुनि; वृश्चति—नष्ट कर सकता है; लोक-संशयम्—लोगों का सन्देह; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; त्वत्-अन्यः—आपके अतिरिक्त; इति—इस प्रकार; मे—मेरे द्वारा; विनिश्चितम्—निष्कर्ष को प्राप्त।

हे महर्षि! इसके पूर्व यह कहीं भी सुनाई नहीं पड़ा कि यमराज के आदेश का उल्लंघन हुआ हो। इसलिए मैं सोचता हूँ कि लोगों को इस पर सन्देह होगा जिसका उन्मूलन अन्य कोई नहीं, अपितु आप ही कर सकते हैं। चूँकि ऐसी मेरी दृढ़ धारणा है, इसलिए कृपा करके इन घटनाओं के कारणों की व्याख्या करें।

श्रीशुक उवाच
भगवत्पुरुषै राजन्याम्याः प्रतिहतोद्यमाः ।
पतिं विज्ञापयामासुर्यमं संयमनीपतिम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; भगवत्-पुरुषैः—भगवान् के आज्ञापालकों या विष्णुदूतों द्वारा; राजन्—हे राजन्; याम्याः—यमराज के दूत; प्रतिहत-उद्यमाः—जिनके प्रयास व्यर्थ हुए; पतिम्—अपने स्वामी; विज्ञापयाम् आसुः—सूचित किया; यमम्—यमराज को; संयमनी-पतिम्—संयमनी पुरी के स्वामी।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया: हे राजन्! जब यमराज के दूत विष्णुदूतों द्वारा चकरा दिये गये और पराजित कर दिये गये तो वे अपने स्वामी संयमनीपुरी के नियंत्रक तथा पापी पुरुषों के स्वामी यमराज के पास इस घटना को बताने पहुँचे।

यमदूता ऊचुः
कति सन्तीह शास्तारो जीवलोकस्य वै प्रभो ।

त्रैविध्यं कुर्वतः कर्म फलाभिव्यक्तिहेतवः ॥ ४॥

शब्दार्थ

यमदूताः ऊचुः—यमराज के दूतों ने कहा; कति—कितने; सन्ति—हैं; इह—इस जगत में; शास्तारः—नियंत्रक या शासक; जीव-लोकस्य—इस भौतिक जगत के; वै—निस्सन्देह; प्रभो—हे स्वामी; त्रै-विध्यम्—प्रकृति के तीन गुणों के अधीन; कुर्वतः—करते हुए; कर्म—कर्म; फल—फलों की; अभिव्यक्ति—अभिव्यक्ति के; हेतवः—कारण।

यमदूतों ने कहा : हे प्रभु! इस भौतिक जगत में कितने नियंत्रक या शासक हैं? प्रकृति के तीन गुणों (सतो, रजो तथा तमो गुणों) के अधीन सम्पन्न कर्मों के विविध फलों को प्रकट करने के लिए कितने कारण उत्तरदायी हैं?

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि वे यमदूत इतने निराश थे कि उन्होंने प्रायः क्रुद्ध होकर अपने स्वामी से पूछा कि क्या उनके अतिरिक्त और भी कई स्वामी हैं? यही नहीं, चूँकि यमदूत पराजित किये जा चुके थे और उनका स्वामी उनकी रक्षा नहीं कर सका था, अतः वे यह कहना चाह रहे थे कि उन्हें ऐसे स्वामी की सेवा करने की आवश्यकता नहीं है। यदि कोई सेवक बिना पराजित हुए अपने स्वामी के आदेशों को पूरा नहीं कर सकता तो ऐसे शक्तिहीन स्वामी की सेवा करने से क्या लाभ?

यदि स्युर्बहवो लोके शास्तारो दण्डधारिणः ।
कस्य स्यातां न वा कस्य मृत्युश्चामृतमेव वा ॥ ५॥

शब्दार्थ

यदि—यदि; स्युः—हैं; बहवः—अनेक; लोके—इस जगत में; शास्तारः—शासक या नियंत्रक; दण्ड-धारिणः—पापी लोगों को दण्ड देने वाले; कस्य—किसका; स्याताम्—हो सकता है; न—नहीं; वा—अथवा; कस्य—किसका; मृत्युः—कष्ट या दुख; च—तथा; अमृतम्—सुख; एव—निश्चय ही; वा—अथवा।

यदि इस ब्रह्माण्ड में अनेक शासक तथा न्यायकर्ता हैं, जो दण्ड तथा पुरस्कार के विषय में मतभेद रखते हों, तो उनके विरोधी कार्य एक दूसरे को प्रभावहीन कर देंगे और न तो कोई दण्डित होगा न पुरस्कृत होगा। अन्यथा, यदि उनके विरोधी कार्य एक दूसरे को प्रभावहीन नहीं कर पाते तो हर एक को दण्ड तथा पुरस्कार दोनों ही देने होंगे।

तात्पर्य : चूँकि यमदूत यमराज के आदेश को पूरा करने में असफल रहे थे, अतः उन्होंने

संदेह व्यक्त किया कि यमराज में पापी को दण्ड देने की शक्ति है भी कि नहीं? यद्यपि वे यमराज के आदेशानुसार अजामिल को बन्दी बनाने गये थे, किन्तु उन्होंने किसी उच्चतर अधिकारी के आदेश के कारण अपने आपको असफल पाया। इसलिए वे इस बारे में अनिश्चित थे कि अधिकारी अनेक हैं या केवल एक। यदि कई अधिकारी हों जो विभिन्न निर्णय दें जो परस्पर विरोधी हों तो कोई व्यक्ति या तो गलत दण्ड या पुरस्कार पा सकता है या फिर वह न तो दण्डित होगा न पुरस्कृत। भौतिक जगत में हमारे अनुभव के अनुसार एक न्यायालय द्वारा दण्डित व्यक्ति दूसरे न्यायालय में याचिका दे सकता है। इस तरह वही व्यक्ति विभिन्न निर्णयों के अनुसार दण्डित या पुरस्कृत किया जा सकता हैं। किन्तु प्रकृति के कानून में या पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के न्यायालय में ऐसे परस्पर विरोधी निर्णय नहीं हो सकते। न्यायकर्ताओं तथा उनके निर्णयों को पूर्ण तथा विरोधों से मुक्त होना चाहिए। वस्तुत: अजामिल के मामले में यमराज की स्थिति अतीव विषम थी, क्योंकि अजामिल को बन्दी बनाने में यमदूत सही थे, किन्तु विष्णुदूतों ने उन्हें निष्फल कर दिया था। यद्यपि इन परिस्थितियों में यमराज पर विष्णुदूत तथा यमदूत दोनों ही दोषारोपण कर रहे थे, किन्तु न्याय करने में वे पूर्ण हैं, क्योंकि उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से शक्ति प्राप्त है। अतएव वे बतायेंगे कि उनकी सही स्थिति क्या है और हर व्यक्ति किस तरह परम नियन्ता पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा नियंत्रित किया जाता है।

किन्तु शास्तृबहुत्वे स्याद्बहूनामिह कर्मिणाम् ।
शास्तृत्वमुपचारो हि यथा मण्डलवर्तिनाम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

किन्तु—लेकिन; शास्तृ—राज्यपालकों या निर्णायकों का; बहुत्वे—विविधता में; स्यात्—हो सकता है; बहूनाम्—अनेकों का; इह—इस जगत में; कर्मिणाम्—कर्म करने वाले पुरुषों का; शास्तृत्वम्—विभागीय व्यवस्था; उपचार:—प्रशासन; हि—निस्सन्देह; यथा—जिस तरह; मण्डल-वर्तिनाम्—विभागीय अध्यक्षों का।

यमदूतों ने आगे कहा : चूँकि कर्मी अनेक हैं, अतएव उनके न्याय करने वाले निर्णायक या शासक भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, किन्तु जिस तरह एक केन्द्रीय सम्राट विभिन्न विभागीय

शासकों को नियंत्रित करता है, उसी तरह सारे निर्णायकों के मार्गदर्शन हेतु एक परम नियन्ता होना चाहिए।

तात्पर्य : सरकारी व्यवस्था में विभिन्न लोगों को न्याय दिलाने के लिए विभागीय अधिकारी हो सकते हैं, किन्तु कानून तो एक होना चाहिए और उस केन्द्रीय नियम को चाहिए कि हर एक को नियंत्रित करे। यमदूत इसकी कल्पना नहीं कर सके कि दो निर्णायक एक ही मामले में दो भिन्न-भिन्न निर्णय दे सकते होंगे; इसलिए वे जानना चाहते थे कि केन्द्रीय निर्णायक कौन है? यमदूतों को विश्वास था कि अजामिल सबसे बड़ा पापी व्यक्ति है और यमराज उसे दण्ड देना चाहते थे, विष्णुदूतों ने उसे क्षमा कर दिया। यही उलझन थी जिसे यमदूत यमराज से स्पष्ट करा लेना चाहते थे।

अतस्त्वमेको भूतानां सेश्वराणामधीश्वरः ।
शास्ता दण्डधरो नृणां शुभाशुभविवेचनः ॥ ७॥

शब्दार्थ

अतः—अतः; त्वम्—तुम; एकः—एक; भूतानाम्—सारे जीवों के; स-ईश्वराणाम्—सारे देवताओं सहित; अधीश्वरः—परम स्वामी; शास्ता—परम शासक; दण्ड-धरः—दण्ड का परम प्रशासक; नृणाम्—मानव समाज का; शुभ-अशुभ-विवेचनः—जो शुभ तथा अशुभ में भेदभाव करता है।

परम निर्णायक तो एक होना चाहिए, अनेक नहीं। हम तो यही समझते थे कि आप परम निर्णायक हैं और आपका देवताओं पर भी अधिकार है। हमारी यह धारणा थी कि आप सारे जीवों के स्वामी हैं, जो सारे मनुष्यों के शुभ तथा अशुभ कर्मों में भेदभाव करते हैं।

तस्य ते विहितो दण्डो न लोके वर्ततेऽधुना ।
चतुर्भिरद्भुतैः सिद्धैराज्ञा ते विप्रलम्भिता ॥ ८॥

शब्दार्थ

तस्य—प्रभाव का; ते—आपको; विहितः—नियत; दण्डः—दण्ड; न—नहीं; लोके—इस जगत में; वर्तते—विद्यमान है; अधुना—अब; चतुर्भिः—चार; अद्भुतैः—अतीव अद्भुत; सिद्धैः—सिद्ध पुरुषों द्वारा; आज्ञा—आदेश; ते—तुम्हारा; विप्रलम्भिता—उल्लंघन किया हुआ।

किन्तु अब हम देखते हैं कि आपके अधिकार के अन्तर्गत नियत किया हुआ दण्ड

प्रभावी नहीं है, क्योंकि चार अद्भुत सिद्ध पुरुषों द्वारा आपके आदेश का उल्लंघन किया जा चुका है।

तात्पर्य : यमदूतों की धारणा थी कि यमराज ही न्याय करने वाले एकमात्र अधिकारी हैं। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि उनके निर्णयों का कोई प्रतिवाद नहीं कर सकता था, किन्तु अब उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि यमराज के आदेश का उल्लंघन सिद्धलोक के चार अद्भुत व्यक्तियों द्वारा हो चुका है।

नीयमानं तवादेशादस्माभिर्यातनागृहान् ।
व्यामोचयन्पातकिनं छित्त्वा पाशान्प्रसह्य ते ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

नीयमानम्—लाया जा रहा; तव आदेशात्—आपके आदेश से; अस्माभिः—हमारे द्वारा; यातना-गृहान्—यातना के कक्षों या नरक लोकों को; व्यामोचयन्—छुड़ाते हुए; पातकिनम्—पापी अजामिल को; छित्त्वा—काटकर; पाशान्—रस्सियों को; प्रसह्य—बलपूर्वक; ते—वे।

हम आपके आदेशानुसार महान् पापी अजामिल को नरक की ओर ला रहे थे, तभी सिद्धलोक के उन सुन्दर पुरुषों ने बलपूर्वक उन रस्सियों की गाँठों को काट दिया जिनसे हम उसे बन्दी बनाये हुए थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टिप्पणी है कि यमदूत विष्णुदूतों को यमराज के समक्ष लाना चाहते थे। यदि यमराज उन विष्णुदूतों को दण्ड द सकते तो यमदूतों को सन्तोष हुआ होता।

तांस्ते वेदितुमिच्छामो यदि नो मन्यसे क्षमम् ।
नारायणेत्यभिहिते मा भैरित्याययुर्द्रुतम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तान्—उनके विषय में; ते—आप से; वेदितुम्—जानने के लिए; इच्छामः—हम चाहते हैं; यदि—यदि; नः—हमारे लिए; मन्यसे—आप सोचते हैं; क्षमम्—उपयुक्त; नारायण—नारायण; इति—इस प्रकार; अभिहिते—उच्चारण किया गया; मा—नहीं; भैः—डरो; इति—इस प्रकार; आययुः—वे आये; द्रुतम्—बहुत शीघ्र।

ज्योंही पापी अजामिल ने नारायण नाम का उच्चारण किया, ये चारों सुन्दर व्यक्ति तुरन्त

वहाँ आ गये और यह कहकर उसे पुनः आश्वस्त किया, ''डरो मत। मत डरो।'' हम आपसे उनके विषय में जानना चाहते हैं। यदि आप यह सोचते हैं कि हम उनके विषय में जान सकते हैं, तो कृपा करके बताइये कि वे कौन हैं।

तात्पर्य : यमराज के दूत चारों विष्णुदूतों से पराजित होने से अत्यधिक खिन्न थे और वे उन्हें यमराज के समक्ष लाना चाहते थे तथा यदि सम्भव हो तो उन्हें दण्ड देना चाहते थे। अन्यथा वे आत्महत्या करना चाह रहे थे। किन्तु इनमें से कोई रास्ता अपनाने के पूर्व वे यमराज से विष्णुदूतों के विषय में जान लेना चाहते थे, क्योंकि वे भी सर्वज्ञ हैं।

श्रीबादरायणिरुवाच
इति देवः स आपृष्टः प्रजासंयमनो यमः ।
प्रीतः स्वदूतान्प्रत्याह स्मरन्पादाम्बुजं हरेः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; देवः—देवता; सः—वह; आपृष्टः—पूछे जाने पर; प्रजा-संयमनः यमः—यमराज, जो जीवों पर नियंत्रण रखते हैं; प्रीतः—प्रसन्न होकर; स्व-दूतान्—अपने सेवकों को; प्रत्याह—उत्तर दिया; स्मरन्—स्मरण करते हुए; पाद-अम्बुजम्—चरणकमलों को; हरेः—भगवान् हरि के।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार पूछे जाने पर जीवों के परम नियन्ता यमराज अपने दूतों से नारायण का पवित्र नाम सुनकर उन पर परम प्रसन्न हुए। उन्होंने भगवान् के चरणकमलों का स्मरण किया और उत्तर देना शुरू किया।

तात्पर्य : जीवों के शुभ तथा अशुभ कर्मों के परम नियन्ता श्रील यमराज अपने सेवकों पर अत्यधिक प्रसन्न हुए, क्योंकि उन्होंने उनके राज्य में नारायण के पवित्र नाम का उच्चारण किया था। यमराज को ऐसे लोगों से पाला पड़ता है, जो निरे पापी होते हैं और नारायण को नहीं समझ पाते हैं। फलस्वरूप जब दूतों ने नारायण का नाम लिया तो यमराज अत्यधिक प्रसन्न हुए, क्योंकि वे भी एक वैष्णव हैं।

यम उवाच
परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च
ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वम् ।
यदंशतोऽस्य स्थितिजन्मनाशा
नस्योतवद्यस्य वशे च लोकः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यमः उवाच—यमराज ने उत्तर दिया; परः—श्रेष्ठ; मत्—मुझसे; अन्यः—दूसरा; जगतः—समस्त चर वस्तुओं का; तस्थुषः—अचर वस्तुओं का; च—तथा; ओतम्—चौड़ाई में, आर-पार; प्रोतम्—लम्बाई में; पटवत्—बुने हुए वस्त्र की भाँति; यत्र—जिसमें; विश्वम्—विराट जगत; यत्—जिसका; अंशतः—आंशिक विस्तार से; अस्य—इस ब्रह्माण्ड का; स्थिति—पालन; जन्म—सृजन; नाशाः—तथा संहार; नसि—नाक में; ओत-वत्—रस्सी की तरह; यस्य—जिसका; वशे—वश में; च—तथा; लोकः—सारी सृष्टि।

यमराज ने कहा : मेरे प्रिय सेवको! तुम लोगों ने मुझे सर्वोच्च स्वीकार किया है, किन्तु मैं वास्तव में हूँ नहीं। मेरे ऊपर तथा इन्द्र एवं चन्द्र समेत अन्य सारे देवताओं के ऊपर एक परम स्वामी तथा नियन्ता हैं। उनके आंशिक स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव हैं, जो ब्रह्माण्ड के सृष्टि पालन एवं संहार के भार को संभालते हैं। वे उन दो धागों के तुल्य हैं, जो बुने हुए वस्त्र की लम्बाई तथा चौड़ाई या ताने-बाने का निर्माण करते हैं। सम्पूर्ण जगत उनके द्वारा उसी तरह नियंत्रित होता है, जिस तरह एक बैल अपने नाक की रस्सी द्वारा नियंत्रित होता है।

तात्पर्य : यमराज के दूतों को सन्देह हुआ कि यमराज के भी ऊपर कोई शासक है। इसलिए उनका सन्देह मिटाने के लिए यमराज ने तुरन्त उत्तर दिया, ''हाँ, सबों के ऊपर एक परम नियन्ता है।'' यमराज कुछ चर जीवों के, यथा मनुष्यों का कार्यभार देखते हैं, किन्तु पशु जो कि चर हैं, उनके नियंत्रण में नहीं हैं। केवल मनुष्य को सही तथा गलत का भान है और इनमें से केवल वे ही मनुष्य, जो पापकर्म करते हैं, यमराज के अधीन होते हैं, इसलिए यद्यपि यमराज नियंत्रक हैं, किन्तु वे कुछ ही जीवों के विभागीय नियंत्रक हैं। अन्य देवता भी हैं, जो अन्य कई विभागों को सँभालते हैं, किन्तु इन सबों के ऊपर एक परम नियन्ता कृष्ण हैं। *ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः*—परम नियन्ता तो कृष्ण हैं। अन्य, जो ब्रह्माण्ड के मामलों के अपने-अपने विभाग सँभालते हैं, परम नियन्ता कृष्ण के आगे नगण्य हैं। *भगवद्गीता* (७.७) में कृष्ण कहते हैं—*मत्तः परतरं नान्यत्*

किञ्चिदस्ति धनञ्जय—हे धनंजय (अर्जुन)! कोई भी मुझसे श्रेष्ठ नहीं। अतएव यमराज ने तुरन्त ही अपने सहायक यमदूतों के सन्देह को इसकी पुष्टि करते हुए दूर कर दिया कि अन्य सबों के ऊपर एक परम नियन्ता है।

श्रील मध्वाचार्य व्याख्या करते हैं कि *ओतं प्रोतम्* शब्द समस्त कारणों के कारण का द्योतक है। परमेश्वर विराट जगत के लिए ताना तथा बाना दोनों ही हैं। *स्कन्द पुराण* के निम्नलिखित श्लोक से इसकी पुष्टि होती है

यथा कन्थापटा: सूत्र ओता: प्रोताश्च स स्थिता:।

एवं विष्णाविदं विश्वम् ओतं प्रोतं च संस्थितम्॥

रजाई के खड़े तथा पड़े दो धागों (ताना-बाना) के समान भगवान् विष्णु इस विराट जगत में ताने-बाने के रूप में स्थित हैं।

यो नामभिर्वाचि जनं निजायां
बध्नाति तन्त्र्यामिव दामभिर्गा: ।
यस्मै बलिं त इमे नामकर्म-
निबन्धबद्धाश्चकिता वहन्ति ॥ १३॥

शब्दार्थ

य:—जो; नामभि:—विभिन्न नामों से; वाचि—वैदिक भाषा में; जनम्—सारे लोगों को; निजायाम्—जो स्वयं उनसे उद्भूत है; बध्नाति—बाँधता है; तन्त्र्याम्—रस्सी को; इव—सदृश; दामभि:—रस्सी से; गा:—बैल; यस्मै—जिसको; बलिम्—कर की छोटी सी भेंट; ते—वे सभी; इमे—इन; नाम-कर्म—नामों तथा विभिन्न कार्यों का; निबन्ध—कृतज्ञता से; बद्धा:—बँधा हुआ; चकिता:—भयभीत; वहन्ति—ढोते हैं।

जिस तरह बैलगाड़ी का चालक अपने बैलों को वश में करने के लिए उनके नथुनों से निकालकर रस्सियाँ (नाथ) बाँध देता है उसी तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सारे व्यक्तियों को वेदों में कहे अपने वचनों रूपी रस्सियों (नाथ) के द्वारा बाँधते हैं, जो मानव समाज के विभिन्न वर्णों के नामों तथा कार्यों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) को निर्धारित करते हैं। इन वर्णों के लोग भयवश परम भगवान् की पूजा अपने-अपने कर्मों के अनुसार भेंटें अर्पित

करते हुए करते हैं।

तात्पर्य : इस भौतिक जगत में हर प्राणी, चाहे वह जो कुछ हो, बद्ध है। चाहे वह मनुष्य हो, देवता हो पशु, वृक्ष या पौधा हो, हर वस्तु प्रकृति के नियमों द्वारा नियंत्रित होता है और इस प्राकृतिक नियंत्रण के पीछे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् रहते हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* द्वारा (९.१०) होती है, जिसमें कृष्ण कहते हैं *मयाध्यक्षेणे प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*—भौतिक प्रकृति मेरे निर्देशन के अनुसार कार्य कर रही है और समस्त चर तथा अचर प्राणियों को उत्पन्न करती है। इस तरह कृष्ण उस प्राकृतिक यंत्र के पीछे रहते हैं, जो उनके नियंत्रण में कार्य करता है।

अन्य जीवों से पृथक्, मनुष्य शरीर के रूप में जो जीव है, वह वर्ण तथा आश्रम विभागों के रूप में वैदिक आदेशों द्वारा सुसम्बद्ध रूप से नियंत्रित होता है। मनुष्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह वर्ण तथा आश्रम के विधि-विधानों का पालन करेगा अन्यथा वह यमराज के दण्ड से बच कर नहीं निकल सकता। बात यह है कि हर मनुष्य से यही आशा की जाती है कि वह परम बुद्धिमान व्यक्ति, ब्राह्मण के पद तक स्वयं को ऊपर उठाये और तब उस पद के आगे निकल करके वैष्णव बने। यही जीवन सिद्धि है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र अपने अपने कर्मों के अनुसार भगवान् की पूजा द्वारा अपने को ऊपर उठा सकते हैं। (*स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः*)। वर्ण तथा आश्रम का विभाजन हर एक के द्वारा कार्यों की सही-सही निष्पादन तथा शान्तिपूर्ण अस्तित्त्व को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है। किन्तु हर एक को निर्देश दिया जाता है कि वह सर्वव्यापी परमेश्वर की पूजा करे (*येन सर्वम् इदं ततम्*)। परमेश्वर ताने-बाने में (*ओतं प्रोतम्*) स्थित हैं, अतएव यदि कोई अपनी शक्ति के अनुसार परमेश्वर की पूजा करते हुए वैदिक आदेशों का पालन करता है, तो उसका जीवन परिपूर्ण होगा। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (१.२.१३) में कहा गया है—

अतः पुम्भिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः।
स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम्॥

''हे द्विजश्रेष्ठ! अतएव यह निष्कर्ष निकला कि मनुष्य जाति-भेद तथा आश्रम के अनुसार नियत कर्तव्यों (*धर्म*) को सम्पन्न करके जिस सर्वोच्च सिद्धि जो कि भगवान् हरि को प्रसन्न करना है, प्राप्त कर सकता है।'' *वर्णाश्रम* संस्थान मनुष्य को भगवद्धाम वापस जाने का पात्र बनाने के लिए पूर्ण विधि उपलब्ध करता है, क्योंकि प्रत्येक वर्ण तथा आश्रम का उद्देश्य भगवान् को प्रसन्न करना है। मनुष्य प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में परम भगवान् को प्रसन्न कर सकता है और यदि वह ऐसा करता है, तो उसका जीवन पूर्ण है। परम भगवान् पूजनीय हैं और हर व्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से उनकी पूजा करता है। जो लोग उनकी प्रत्यक्ष पूजा करते हैं उन्हें मुक्ति-लाभ जल्दी हो जाता है, जबकि अप्रत्यक्ष रीति से सेवा करने वाले की मुक्ति विलम्बित होती है।

नामभिर्वाचि शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। वर्णाश्रम संस्थान में विभिन्न नाम हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी। *वाक्* अथवा वैदिक आदेश इन सारे विभागों के लिए निर्देश देते हैं। हर व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है कि वह परमेश्वर को नमस्कार करे और वेदों में जिस तरह दर्शाया गया है, अपने कर्तव्य पूरे करे।

अहं महेन्द्रो निरृतिः प्रचेताः
सोमोऽग्निरीशः पवनो विरिञ्चिः ।
आदित्यविश्वे वसवोऽथ साध्या
मरुद्गणा रुद्रगणाः ससिद्धाः ॥ १४॥
अन्ये च ये विश्वसृजोऽमरेशा
भृग्वादयोऽस्पृष्टरजस्तमस्काः ।
यस्येहितं न विदुः स्पृष्टमायाः
सत्त्वप्रधाना अपि किं ततोऽन्ये ॥ १५॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं, यमराज; महेन्द्रः—इन्द्र, स्वर्ग का राजा; निरृतिः—निर्ऋति; प्रचेताः—जल का नियन्ता, वरुण; सोमः—चन्द्रमा; अग्निः—अग्नि; ईशः—शिव; पवनः—पवनदेव; विरिञ्चिः—ब्रह्मा; आदित्य—सूर्य; विश्वे—विश्वासु; वसवः—आठों वसु; अथ—भी; साध्याः—देवतागण; मरुत्-गणाः—वायु के स्वामी; रुद्र-गणाः—शिव के अंश; स-सिद्धाः—सिद्ध लोक के निवासियों सहित; अन्ये—अन्य; च—तथा; ये—जो; विश्व-सृजः—मरीचि तथा विश्व मामलों के अन्य स्रष्टा; अमर-ईशाः—बृहस्पति जैसे देवता; भृगु-आदयः—भृगु इत्यादि ऋषिगण; अस्पृष्ट—अकलुषित; रजः-तमस्काः—

प्रकृति के निम्नतर गुणों (रजोगुण तथा तमोगुण) द्वारा; यस्य—जिसका; ईहितम्—कार्य; न विदुः—नहीं जानते; स्पृष्ट-मायाः—माया द्वारा मोहित; सत्त्व-प्रधानाः—मुख्यरूप से सतोगुणी; अपि—यद्यपि; किम्—क्या कहा जाये; ततः—उनकी अपेक्षा; अन्ये—अन्य।

मैं यमराज, स्वर्ग का राजा इन्द्र, निर्ऋति, वरुण, चन्द्र, अग्नि, शिव, पवन, ब्रह्मा, सूर्य, विश्वासु, आठों वरुण, साध्यगण, मरुतगण, सिद्धगण; तथा मरीचि एवं अन्य ऋषिगण जो ब्रह्माण्ड के विभागीय कार्यकर्ताओं को चलाने में लगे रहते हैं, बृहस्पति इत्यादि सर्वोत्तम देवतागण तथा भृगु आदि मुनिगण—ये सभी प्रकृति के दो निम्न गुणों—रजो तथा तमोगुण के प्रभाव से निश्चित रूप से मुक्त होते हैं। फिर भी, यद्यपि हम सतोगुणी हैं, तो भी हम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के कार्यों को नहीं समझ सकते। तो फिर दूसरों के विषय में क्या कहा जाये जो मोह के अधीन होने से ईश्वर को जानने के लिए केवल मानसिक ऊहापोह करते हों?

तात्पर्य : इस विराट जगत के अन्तर्गत मनुष्य तथा अन्य जीव प्रकृति के तीन गुणों द्वारा नियंत्रित होते हैं। ऐसे जीव जो प्रकृति के निम्न गुणों—रजो तथा तमो गुणों—द्वारा नियंत्रित होते हैं उनमें ईश्वर को समझ पाने की कोई सम्भावना नहीं है। यहाँ तक कि जो सतोगुणी हैं, यथा अनेक देवता तथा महान् ऋषिगण, जिनका वर्णन इन श्लोकों में हुआ है, वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के कार्यों को नहीं समझ सकते। जैसा कि *भगवद्गीता* में कहा गया है, जो व्यक्ति भगवान् की भक्ति को प्राप्त है, वह सारे भौतिक गुणों से परे होता है। अतएव भगवान् स्वयं कहते हैं कि उन्हें केवल वे ही भक्त समझ सकते हैं, जो समस्त भौतिक गुणों से परे हैं (*भक्त्या मामभिजानाति*) उनके अतिरिक्त कोई नहीं समझ सकता। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (१.९.१६) में भीष्मदेव ने महाराज युधिष्ठिर से कहा है—

न ह्यस्य कर्हिचिद् राजन् पुमान् वेद विधित्सितम्।

यद्विजिज्ञासया युक्ता मुह्यन्ति कवयोऽपि हि॥

''हे राजन्! कोई भी व्यक्ति भगवान् (श्रीकृष्ण) की योजना को नहीं जान सकता। यद्यपि बड़े

बड़े दार्शनिक विशद् रूप से जिज्ञासा करते हैं, किन्तु वे भी मोहग्रस्त हो जाते हैं।'' अत: कोई भी व्यक्ति ईश्वर को शुष्क दार्शनिक ज्ञान द्वारा नहीं समझ सकता। निस्सन्देह मानसिक ऊहापोह से मनुष्य मोहग्रस्त हो जायेगा (*मुह्यन्ति*)। इसकी पुष्टि स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* (७.३) में की है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वत: ॥

हजारों पुरुषों में से कोई एक सिद्धि के लिए प्रयत्न करता है और सिद्धों में भी, जो पहले सिद्ध हो चुके हैं, उनमें से केवल वह जो भक्तियोग अपनाता है, कृष्ण को समझ सकता है।

यं वै न गोभिर्मनसासुभिर्वा
हृदा गिरा वासुभृतो विचक्षते ।
आत्मानमन्तर्हृदि सन्तमात्मनां
चक्षुर्यथैवाकृतयस्ततः परम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

यम्—जिसको; वै—निस्सन्देह; न—नहीं; गोभि:—इन्द्रियों द्वारा; मनसा—मन से; असुभि:—प्राण वायु द्वारा; वा—अथवा; हृदा—विचारों से; गिरा—शब्दों से; वा—अथवा; असु-भृत:—जीव; विचक्षते—देखते या जानते हैं; आत्मानम्—परमात्मा को; अन्त:-हृदि—हृदय के भीतर; सन्तम्—विद्यमान; आत्मनाम्—जीवों के; चक्षु:—नेत्र; यथा—जिस तरह; एव—निस्सन्देह; आकृतय:—शरीर के विभिन्न अंग; तत:—उनकी तुलना में; परम्—उच्चतर।

जिस तरह शरीर के विभिन्न अंग आँखों को नहीं देख सकते, उसी तरह सारे जीव परमेश्वर को नहीं देख सकते जो हर एक के हृदय में परमात्मा के रूप में स्थित रहते हैं। न तो इन्द्रियों से, न मन से, न प्राणवायु से, न हृदय के अन्दर के विचारों से, न ही शब्दों की ध्वनि से जीवात्माएँ परमेश्वर की असली स्थिति को निश्चित कर सकते हैं।

तात्पर्य : शरीर के विभिन्न अंगों में आँख को देख सकने की शक्ति नहीं होती, किन्तु आँखें शरीर के विभिन्न भागों की गतियों का निर्देशन करती हैं। पाँव इसलिए आगे बढ़ते हैं, क्योंकि आँखें देखती हैं कि उनके सामने क्या है और हाथ स्पर्श करता है, क्योंकि आँखें स्पर्श करने योग्य

वस्तुओं को देखती हैं। इसी तरह प्रत्येक जीवात्मा उन परमात्मा के निर्देशानुसार कार्य करता है, जो हृदय के भीतर स्थित हैं। जैसा कि *भगवद्गीता* (१५.१५) में स्वयं भगवान् पुष्टि करते हैं—*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*—मैं हर एक के हृदय में आसीन हूँ और स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति के लिए निर्देशन करता हूँ। *भगवद्गीता* में अन्यत्र कहा गया है—*ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति*—परमात्मा के रूप में परमेश्वर हृदय के भीतर स्थित रहते हैं। जीव परमात्मा की स्वीकृति के बिना कुछ भी नहीं कर सकता। परमात्मा प्रत्येक क्षण कर्म करता है, किन्तु जीव अपनी इन्द्रियों के संचालन द्वारा परमात्मा के रूप तथा कार्यों को नहीं समझ सकता। आँखों तथा शारीरिक अंगों का उदाहरण अति उपयुक्त है। यदि अंग देख सकते तो वे आँखों की सहायता के बिना ही आगे चल सकते, किन्तु यह असम्भव है। यद्यपि मनुष्य परमात्मा को अपने हृदय में ऐन्द्रिय कार्यों द्वारा नहीं देख सकता, किन्तु परमात्मा का निर्देशन आवश्यक है।

तस्यात्मतन्त्रस्य हरेरधीशितुः
परस्य मायाधिपतेर्महात्मनः ।
प्रायेण दूता इह वै मनोहरा-
श्चरन्ति तद्रूपगुणस्वभावाः ॥ १७॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका; आत्म-तन्त्रस्य—आत्मनिर्भर, किसी अन्य व्यक्ति पर आश्रित नहीं; हरेः—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का; अधीशितुः—प्रत्येक वस्तु का स्वामी; परस्य—ब्रह्मा का; माया-अधिपतेः—माया के स्वामी; महा-आत्मनः—सर्वश्रेष्ठ चेतन आत्मा; प्रायेण—प्रायः; दूताः—दूत; इह—इस जगत में; वै—निस्सन्देह; मनोहराः—बर्ताव तथा शारीरिक स्वरूप में सुहावना; चरन्ति—चलते फिरते हैं; तत्—उसका; रूप—शारीरिक रूप वाला; गुण—दिव्य गुण; स्वभावाः—तथा स्वभाव।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् आत्म-निर्भर तथा पूरी तरह स्वतंत्र हैं। वे माया समेत हर एक के स्वामी हैं। वे रूप, गुण तथा स्वभाव से युक्त हैं और इसी तरह उनके आदेशपालक, अर्थात् वैष्णव, जो अत्यन्त सुन्दर होते हैं, उन्हीं जैसे ही शारीरिक स्वरूप दिव्य गुण तथा दिव्य स्वभाव से युक्त होते हैं। वे इस जगत में पूर्ण स्वतंत्रता के साथ सदैव विचरण करते हैं।

तात्पर्य : यमराज परम नियन्ता पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का वर्णन कर रहे थे, किन्तु यमराज के

दूत विष्णुदूतों के विषय में जानने के लिए अत्यधिक उत्सुक थे, जिन्होंने अजामिल से सम्बन्धित मुठभेड़ में उन्हें हरा दिया था। इसलिए यमराज ने कहा कि विष्णुदूत अपने शारीरिक रूप, दिव्य गुणों तथा स्वभाव में भगवान् के सदृश हैं। दूसरे शब्दों में, विष्णुदूत या वैष्णव प्राय: परम भगवान् जितने ही योग्य होते हैं। यमराज ने यमदूतों को सूचित किया कि विष्णुदूत भगवान् विष्णु से कम शक्तिशाली नहीं हैं। चूँकि विष्णु यमराज से ऊपर हैं, इसलिए विष्णुदूत यमदूतों के ऊपर हैं। अत: विष्णुदूतों द्वारा रक्षित व्यक्तियों को यमदूत छू तक नहीं सकते।

भूतानि विष्णो: सुरपूजितानि
दुर्दर्शलिङ्गानि महाद्भुतानि ।
रक्षन्ति तद्भक्तिमत: परेभ्यो
मत्तश्च मर्त्यानथ सर्वतश्च ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

भूतानि—जीव या सेवक; विष्णो:—विष्णु के; सुर-पूजितानि—देवताओं द्वारा पूजित; दुर्दर्श-लिङ्गानि—सरलता से न दिखने वाले रूपों वाले; महा-अद्भुतानि—अत्यन्त अद्भुत; रक्षन्ति—वे रक्षा करते हैं; तत्-भक्ति-मत:—भगवान् के भक्त; परेभ्य:—अन्यों से, जो शत्रुता रखते हैं; मत्त:—मुझ (यमराज) से तथा मेरे दूतों से; च—तथा; मर्त्यान्—मनुष्यों को; अथ—इस प्रकार; सर्वत:—हर वस्तु से; च—तथा।

भगवान् विष्णु के दूत, जिनकी पूजा देवता भी किया करते हैं, विष्णु जैसे ही अद्भुत शारीरिक लक्षणों से युक्त होते हैं और विरले ही दिखाई देते हैं। ये विष्णुदूत भगवद्भक्तों की रक्षा उनके शत्रुओं, ईर्ष्यालु व्यक्तियों और मेरे अधिकार क्षेत्र के साथ ही साथ प्राकृतिक उत्पातों से भी करते हैं।

तात्पर्य : यमराज ने विष्णुदूतों के गुणों का विशेष रूप से वर्णन अपने सेवकों को आश्वस्त करने के लिए किया है, जिससे वे उनसे ईर्ष्या न करें। यमराज ने यमदूतों को आगाह किया कि विष्णुदूतों की देवताओं द्वारा आदरपूर्वक पूजा की जाती है और वे भगवद्भक्तों को शत्रुओं के हाथों से, प्राकृतिक उत्पातों से तथा इस जगत में सारी संकटपूर्ण स्थितियों से बचाने के प्रति सदैव सतर्क रहते हैं। कभी-कभी कृष्णभावनामृत-संघ के सदस्य विश्वयुद्ध के आसन्न संकट से भयभीत

रहते हैं और पूछते हैं कि यदि युद्ध हुआ तो उनका क्या होगा। उन्हें सभी प्रकार के संकट में विष्णुदूतों द्वारा या पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा अपनी सुरक्षा के प्रति आश्वस्त रहना चाहिए जैसा कि *भगवद्गीता* में पुष्टि की गई है (*कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्त: प्रणश्यति*)। भौतिक संकट भक्तों के लिए नहीं होता। इसकी भी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* द्वारा होती है। *पदं पदं यद् विपदां न तेषाम्*—इस जगत में पग पग पर संकट हैं, किन्तु वे उन भक्तों के लिए नहीं होते जिन्होंने भगवान् के चरणकमलों में पूरी तरह आत्मसमर्पण कर दिया है। भगवान् विष्णु के शुद्ध भक्तों को भगवान् के संरक्षण पर पूरी तरह आश्वस्त हो जाना चाहिए और जब तक वे इस भौतिक जगत में हैं, उन्हें चाहिए कि श्री चैतन्य महाप्रभु तथा कृष्ण के सम्प्रदाय अर्थात् कृष्णभावनामृत के हरे कृष्ण आन्दोलन का प्रचार करके पूरी तरह भक्ति में लगे रहें।

धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतं
न वै विदुर्ऋषयो नापि देवा: ।
न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्या:
कुतो नु विद्याधरचारणादय: ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

धर्मम्—असली धार्मिक सिद्धान्त या धर्म के प्रामाणिक नियम; तु—लेकिन; साक्षात्—प्रत्यक्षत:; भगवत्—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा; प्रणीतम्—निर्मित; न—नहीं; वै—निस्सन्देह; विदु:—वे जानते हैं; ऋषय:—भृगु जैसे महान् ऋषि; न—नहीं; अपि—भी; देवा:—देवता; न—नहीं; सिद्ध-मुख्या:—सिद्धलोक के मुख्य नेता; असुरा:—असुरगण; मनुष्या:—भूर्लोक के निवासी; कुत:—कहाँ; नु—निस्सन्देह; विद्याधर—विद्याधर नामक कनिष्ठ देवता; चारण—उन लोकों के निवासी जहाँ के लोग स्वभाव से महान् संगीतकार होते हैं; आदय:—इत्यादि।

असली धार्मिक सिद्धान्तों का निर्माण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा किया जाता है। पूर्णतया सतोगुणी महान् ऋषि तक भी, जो सर्वोच्च लोकों में स्थान पाये हुए हैं, वे भी असली धार्मिक सिद्धान्तों को सुनिश्चित नहीं कर सकते, न ही देवतागण, न सिद्धलोक के नामक ही कर सकते हैं, तो असुरों, सामान्य मनुष्यों, विद्याधरों तथा चारणों की कौन कहे?

तात्पर्य : जब विष्णुदूतों ने यमदूतों को धर्म के सिद्धान्तों का वर्णन करने के लिए ललकारा तो उन्होंने बतलाया—*वेद प्रणिहितो धर्म:*—धार्मिक सिद्धान्त वैदिक वाङ्मय में निर्मित सिद्धान्त हैं।

किन्तु उन्हें यह ज्ञात न था कि वैदिक वाङ्मय में कर्मकाण्ड हैं, जो दिव्य नहीं है, अपितु भौतिक जगत में भौतिकतावादी व्यक्तियों के बीच शान्ति तथा व्यवस्था बनाये रखने के निमित्त हैं। असली धार्मिक सिद्धान्त तो *निस्त्रैगुण्य* हैं अर्थात् तीनों गुणों से परे या अलौकिक हैं। यमदूत इन अलौकिक धार्मिक सिद्धान्तों को नहीं जानते थे, अत: जब उन्हें अजामिल को बन्दी बनाने से रोका गया तो उन्हें आश्चर्य हुआ। ऐसे भौतिकतावादी लोगों का जो अपनी सारी श्रद्धा वैदिक *कर्मकाण्ड* में रखते हैं, वर्णन *भगवद्गीता* (२.४२) में किया गया है, जिसमें कृष्ण कहते हैं—*वेदवादरता: पार्थ नान्यदस्तीति वादिन:*—वेदों के समर्थक तथाकथित अनुयायी कहते हैं कि वैदिक अनुष्ठानों से बढ़कर कुछ भी नहीं है। निस्सन्देह, भारतवर्ष में लोगों का एक समुदाय ऐसा है, जो वैदिक कर्मकाण्ड का अतीव प्रेमी है, किन्तु वह इन कर्मकाण्डों का अर्थ नहीं समझता जो मनुष्य को क्रमश: कृष्ण को जानने के दिव्य पद तक ऊपर उठाने के लिए हैं (*वेदैश्च सर्वेरहमेव वेद्य:*)। जो लोग इस सिद्धान्त को नहीं जानते, किन्तु वैदिक कर्मकाण्ड के प्रति श्रद्धालु बने रहते हैं, वे *वेदवादरता:* कहलाते हैं।

यहाँ पर कहा गया है कि असली धार्मिक सिद्धान्त तो वह है, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा प्रदत्त होता है। इस सिद्धान्त का कथन *भगवद्गीता* में हुआ है। *सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*—मनुष्य को अन्य सारे कर्तव्यों को छोड़ देना चाहिए और कृष्ण के चरणकमलों में शरण लेनी चाहिए। यही असली धार्मिक सिद्धान्त है, जिसका पालन हर एक को करना चाहिए। वैदिक शास्त्रों का पालन करने वाला भी, हो सकता है, इस अलौकिक सिद्धान्त से परिचित न हो, क्योंकि उच्चलोक के देवतागण तक इससे अवगत नहीं हैं। इस दिव्य धार्मिक सिद्धान्त को सीधे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से या उनके विशेष प्रतिनिधि से समझना होगा, जैसाकि अगले श्लोकों में बतलाया गया है।

स्वयम्भूर्नारद: शम्भु: कुमार: कपिलो मनु: ।

प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥ २० ॥
द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः ।
गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

स्वयम्भूः—ब्रह्मा; नारदः—महान् सन्त नारद; शम्भुः—शिवजी; कुमारः—चार कुमार; कपिलः—कपिल; मनुः—स्वायम्भुव मनु; प्रह्लादः—प्रह्लाद महाराज; जनकः—जनक महाराज; भीष्मः—भीष्म पितामह; बलिः—बलि महाराज; वैयासकिः—व्यासदेव के पुत्र शुकदेव; वयम्—हम; द्वादश—बारह; एते—ये; विजानीमः—जानते हैं; धर्मम्—असली धार्मिक सिद्धान्तों को; भागवतम्—जो यह शिक्षा देता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से किस तरह प्रेम किया जाये; भटाः—हे सेवको; गुह्यम्—अत्यन्त गोपनीय; विशुद्धम्—अलौकिक, भौतिक गुणों से दूषित नहीं; दुर्बोधम्—आसानी से समझ में न आने वाला; यम्—जिसको; ज्ञात्वा—जानकर; अमृतम्—शाश्वत जीवन; अश्नुते—भोग करता है।

ब्रह्माजी, भगवान् नारद, शिवजी, चार कुमार, भगवान् कपिल (देवहूति के पुत्र), स्वायंभुव मनु, प्रह्लाद महाराज, जनक महाराज, भीष्म पितामह, बलि महाराज, शुकदेव गोस्वामी तथा मैं असली धर्म के सिद्धान्त को जानने वाले हैं। हे सेवको! यह अलौकिक धार्मिक सिद्धान्त, जो भागवत धर्म या परम भगवान् की शरणागति तथा भगवत्प्रेम कहलाता है, प्रकृति के तीनों गुणों से अकलुषित है। यह अत्यन्त गोपनीय है और सामान्य मनुष्य के लिए दुर्बोध है, किन्तु संयोगवश यदि कोई भाग्यवान् इसे समझ लेता है, तो वह तुरन्त मुक्त हो जाता है और इस तरह भगवद्धाम लौट जाता है।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण ने *भगवद्गीता* में भागवत धर्म को अत्यन्त गोपनीय धार्मिक सिद्धान्त कहा है (*सर्वगुह्यतमम् गुह्याद् गुह्यतरम्*)। कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "चूँकि तुम मेरे मित्र हो इसलिए मैं तुम्हें परम गोपनीय धर्म बतला रहा हूँ।" *सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*—अन्य सारे कर्तव्यों को त्याग दो और मेरी शरण में आओ। कोई यह पूछ सकता है, "यदि यह सिद्धान्त विरले ही समझ सकते हैं, तो फिर इसका लाभ क्या है? इसके उत्तर में यहाँ पर यमराज कहते हैं कि यह धार्मिक सिद्धान्त तभी ज्ञेय है जब कोई ब्रह्मा, शिव, चार कुमारों तथा अन्य प्रामाणिक अधिकारियों की परम्परा का पालन करता है। शिष्य परम्पराएँ चार हैं—एक ब्रह्मा से, एक शिव से, एक लक्ष्मी से तथा एक कुमारों से चलने वाली। ब्रह्मा से चलने वाली शिष्य-परम्परा ब्रह्म सम्प्रदाय कहलाती है, शिव (शम्भु) से चलने वाली परम्परा रुद्र-सम्प्रदाय तथा देवी लक्ष्मी से

चलने वाली परम्परा श्रीसम्प्रदाय तथा कुमारों से चलने वाली कुमार-सम्प्रदाय कहलाती है। मनुष्य को अत्यन्त गोपनीय धार्मिक प्रणाली को समझने के लिए इन चार सम्प्रदायों में से किसी एक की शरण ग्रहण करनी होती है। *पद्मपुराण* में कहा गया है कि *सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मता:*—यदि कोई इन चार मान्यताप्राप्त शिष्य-परम्पराओं का पालन नहीं करता तो उसका मंत्र या उसकी दीक्षा निष्फल है। वर्तमान समय में कई *अप-सम्प्रदाय* हैं अर्थात् ऐसे सम्प्रदाय जो प्रामाणिक नहीं हैं और जिनका ब्रह्मा, शिव, कुमारगण या लक्ष्मी जैसे महाजनों से कोई सम्बन्ध नहीं है। लोग ऐसे सम्प्रदायों से भ्रमित होते हैं। शास्त्रों का कहना है कि ऐसे सम्प्रदाय में दीक्षित होना समय का अपव्यय है, क्योंकि इससे मनुष्य को असली धार्मिक सिद्धान्तों को समझने में मदद नहीं मिलेगी।

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥ २२॥

शब्दार्थ

एतावान्—इतना; एव—निस्सन्देह; लोके अस्मिन्—इस भौतिक जगत में; पुंसाम्—जीवों का; धर्मः—धार्मिक सिद्धान्त; परः—दिव्य; स्मृतः—मान्यता प्राप्त; भक्ति-योगः—भक्तियोग या भक्तिमय सेवा; भगवति—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति (देवताओं के प्रति नहीं); तत्—उसका; नाम—पवित्र नाम का; ग्रहण-आदिभिः—कीर्तन इत्यादि।

भगवान् के नाम के कीर्तन से प्रारम्भ होने वाली भक्ति ही मानव-समाज में जीव के लिए परम धार्मिक सिद्धान्त है।

तात्पर्य : जैसाकि पिछले श्लोक में कहा गया है *धर्मं भागवतम्*—असली धार्मिक सिद्धान्त भागवत धर्म हैं, जिनका वर्णन *श्रीमद्भागवत* में या *भागवत* के प्रारम्भिक अध्ययन *भगवद्गीता* में हुआ है। ये सिद्धान्त क्या हैं? *भागवत* का कथन है *धर्मः प्रोज्झितेकैतवोऽत्र*— *श्रीमद्भागवत* में ठगने वाली धार्मिक प्रणालियाँ नहीं हैं। *भागवत* की हर वस्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से सीधे सम्बन्धित है। *भागवत* में और भी कहा गया है—*स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे*—परमधर्म वह है, जो अपने अनुयायियों को यह सिखाता है कि उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से कैसे

प्रेम किया जाये जो व्यावहारिक ज्ञान की पहुँच से परे हैं। ऐसी धार्मिक प्रणाली *तन्नाम ग्रहण*—अर्थात् भगवन्नाम के कीर्तन से प्रारम्भ होती है (*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्*)। भगवन्नाम् का कीर्तन करने तथा भावावेश में आकर नृत्य करने के बाद मनुष्य क्रमशः भगवान् के रूप, भगवान् की लीलाओं तथा भगवान् के दिव्य गुणों को देखता है। इस तरह से वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की स्थिति को पूरी तरह से समझ लेता है। भगवान् किस तरह भौतिक जगत में अवतरित होते हैं, किस तरह जन्म लेते हैं और क्या-क्या कार्य करते हैं, इनके विषय में मनुष्य जान तो सकता है, किन्तु तब जब वह भक्ति करे। जैसा कि *भगवद्गीता* में कहा गया है—*भक्त्या मामभिजानाति*—एकमात्र भक्ति द्वारा मनुष्य परम भगवान् के विषय में सब कुछ समझ सकता है। यदि कोई सौभाग्यवश इस तरह से परम भगवान् को समझ लेता है, तो परिणाम निकलता है—*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति*—अपना शरीर त्यागने के बाद फिर उसे इस भौतिक जगत में जन्म नहीं लेना पड़ता प्रत्युत वह भगवद्धाम लौट जाता है। यही चरम सिद्धि है। इसीलिए *भगवद्गीता* (८.१५) में कृष्ण कहते हैं—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।

नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥

"मुझे प्राप्त करके महापुरुष, जो भक्तियोगी हैं, कभी भी दुखों से पूर्ण इस अनित्य जगत में नहीं लौटते, क्योंकि उन्हें परम सिद्धि प्राप्त हो चुकी होती है।"

नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ।
अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥ २३॥

शब्दार्थ

नाम—पवित्र नाम के; उच्चारण—उच्चारण का; माहात्म्यम्—उच्च स्थान; हरेः—परम ईश्वर का; पश्यत—जरा देखो; पुत्रकाः—हे मेरे पुत्रवत् सेवको; अजामिलः अपि—अजामिल (जो महापापी था) भी; येन—जिसके कीर्तन से; एव—निश्चय ही; मृत्यु-पाशात्—मृत्यु की रस्सियों से; अमुच्यत—छूट गया।

हे मेरे पुत्रवत् सेवको! जरा देखो न, भगवन्नाम का कीर्तन कितना महिमायुक्त है! परम

पापी अजामिल ने यह न जानते हुए कि वह भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण कर रहा है, केवल अपने पुत्र को पुकारने के लिए नारायण नाम का उच्चारण किया। फिर भी भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण करने से उसने नारायण का स्मरण किया और इस तरह से वह तुरन्त मृत्यु के पाश से बचा लिया गया।

तात्पर्य : हरे कृष्ण मंत्र के कीर्तन की महत्ता के विषय में शोध करने की आवश्यकता नहीं है। अजामिल का इतिहास भगवान् के नाम की शक्ति तथा पवित्र नाम का निरन्तर उच्चारण करने वाले व्यक्ति के उच्च पद का यथेष्ठ प्रमाण है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने परामर्श दिया है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

इस कलियुग में मुक्त होने के लिए जितने कर्मकाण्डों की आवश्यकता है उन्हें कोई सम्पन्न नहीं कर सकता। ऐसा कर पाना अत्यन्त कठिन है। अत: सारे शास्त्रों तथा आचार्यों ने संस्तुति की है कि इस युग में मनुष्य पवित्र नाम का कीर्तन करे।

एतावतालमघनिर्हरणाय पुंसां
सङ्कीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम् ।
विक्रुश्य पुत्रमघवान्यदजामिलोऽपि
नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

एतावता—इतने से; अलम्—पर्याप्त; अघ-निर्हरणाय—पापकर्मों के फलों को दूर करने के लिए; पुंसाम्—मनुष्यों का; सङ्कीर्तनम्—सामूहिक कीर्तन; भगवत:—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के; गुण—अलौकिक गुणों का; कर्म-नाम्नाम्—तथा उनके कार्यों एवं लीलाओं के अनुसार उनके नामों का; विक्रुश्य—अपराधरहित, क्रन्दन; पुत्रम्—अपने पुत्र से; अघवान्—पापी; यत्—चूँकि; अजामिल: अपि—अजामिल तक ने; नारायण—भगवान् का नाम, नारायण; इति—इस प्रकार; म्रियमाण:—मरणासन्न; इयाय—प्राप्त की; मुक्तिम्—मुक्ति।

अतएव यह समझ लेना चाहिए कि मनुष्य भगवान् के पवित्र नाम का और उनके गुणों तथा कार्यों का कीर्तन करने से समस्त पाप फलों से सरलता से छुटकारा पा जाता है। पापफलों से छुटकारा पाने के लिए इसी एकमात्र विधि की संस्तुति की जाती है। यदि कोई

अशुद्ध उच्चारण द्वारा भी भगवान् के नाम का कीर्तन करता है, तो उसे भवबन्धन से छुटकारा मिल जायेगा, किन्तु यदि वह अपराधरहित होकर कीर्तन करे। उदहारणार्थ, अजामिल अत्यन्त पापी था, किन्तु मरते समय उसने पवित्र नाम का उच्चारण किया और यद्यपि वह अपने पुत्र को पुकार रहा था, किन्तु उसे पूर्ण मुक्ति प्राप्त हुई, क्योंकि उसने नारायण के नाम का स्मरण किया।

तात्पर्य : रघुनाथदास गोस्वामी के पिता की सभा में हरिदास ठाकुर ने पुष्टि की कि एकमात्र भगवन्नाम का उच्चारण करने से मनुष्य मुक्त हो जाता है भले ही उसने पूर्णतया निरपराध भाव से उच्चारण न किया हो। स्मार्त ब्राह्मण तथा मायावादी जन विश्वास नहीं करते कि मनुष्य इस तरह मुक्ति पा सकता है, किन्तु हरिदास ठाकुर के कथन की सच्चाई का समर्थन *श्रीमद्भागवत* के अनेक उद्धरणों द्वारा होता है।

उदाहरणार्थ, इस श्लोक की टीका करते हुए श्रीधर स्वामी ने निम्नलिखित उद्धरण दिया है—

सायं प्रातर्गृणन् भक्त्या दु:खग्रामाद् विमुच्यते

''यदि कोई अत्यन्त भक्तिपूर्वक संध्या तथा प्रात: भगवन्नाम का सदैव उच्चारण करता है, तो वह सारे भौतिक कष्टों से मुक्त हो सकता है।'' अन्य उद्धरण से इसकी पुष्टि होती है कि यदि कोई प्रतिदिन अतीव आदरपूर्वक भगवन्नाम का निरन्तर श्रवण करता है, तो वह मुक्ति प्राप्त कर सकता है (*अनुदिनम्-इदम् आदरेण शृण्वन्*)। अन्य उद्धरण कहता है—

श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मण:।

जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम्॥

''मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव भगवान् के असामान्य रूप से अद्भुत कार्यों का सदैव कीर्तन तथा श्रवण करे, वह इन कार्यों का ध्यान करे तथा भगवान् को प्रसन्न करने का प्रयास करे'' (*भागवत* ११.३.२७)।

श्रीधर स्वामी पुराणों से भी उद्धरण देते हैं। *पापक्षयश्च भवति स्मरतां तमहर्निशम्*—भगवान् के

चरणकमलों का दिन रात (*अहर्निशम्*) स्मरण करके मनुष्य सारे पापफलों से मुक्त हो सकता है। इसके आगे वे *भागवत* (६.३.३१) से उद्धरण देते हैं—

तस्मात् सङ्कीर्तनं विष्णोर्जगन्मंगलमंहसाम्।

महतामपि कौरव्य विद्धयैकान्तिक निष्कृतम्॥

ये सारे उद्धरण सिद्ध करते हैं कि जो व्यक्ति भगवान् के पवित्र कार्यों, नाम, यश तथा रूप के कीर्तन एवं श्रवण में निरन्तर लगा रहता है, वह मुक्त है। जैसाकि इस श्लोक में अद्‌भुत ढंग से कहा गया है—*एतावतालम् अघनिर्हरणाय पुंसाम्*—केवल भगवन्नाम का उच्चारण करने से मनुष्य सारे पापफलों से मुक्त हो जाता है।

इस श्लोक में प्रयुक्त *अलम्* शब्द सूचित करता है कि भगवन्नाम का उच्चारण करना ही पर्याप्त है। यह शब्द विभिन्न आशयों से प्रयुक्त किया जाता है। जैसाकि संस्कृत भाषा के सबसे प्रामाणिक कोश *अमरकोश* में कहा गया है—*अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम्*—*अलम्* शब्द का प्रयोग ''आभूषण'' ''पर्याप्त,'' ''शक्ति'' तथा ''संयम'' अर्थों में किया जाता है। यहाँ पर *अलम्* शब्द यह सूचित करने के लिए प्रयुक्त किया गया है कि किसी अन्य विधि की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि भगवन्नाम का उच्चारण ही पर्याप्त है। यदि कोई गलत ढंग से भी उच्चारण करता है, तो वह उच्चारण करने से सारे पापफलों से मुक्त हो जाता है।

पवित्र नाम की इस उच्चारण-शक्ति का प्रमाण है अजामिल की मुक्ति। जब अजामिल ने नारायण के पवित्र नाम का उच्चारण किया, तो उसे परमेश्वर का ठीक से स्मरण नहीं आया; बजाय इसके उसने अपने पुत्र का स्मरण किया। यह तो निश्चित है कि मृत्यु के समय अजामिल अत्यधिक शुद्ध नहीं था। वह तो महान् पापी के रूप में विख्यात था। इतना ही नहीं, मृत्यु के समय मनुष्य की शारीरिक दशा पूरी तरह अस्त-व्यस्त हो जाती है, अत: ऐसी विषम स्थिति में अजामिल के लिए स्पष्ट रूप से उच्चारण कर सकना अत्यन्त कठिन होता। तो भी, अजामिल ने एकमात्र भगवन्नाम के नाम का उच्चारण करने से मुक्ति प्राप्त की। अतएव, उन लोगों के विषय में क्या कहा जाये जो

अजामिल जितने पापी नहीं हैं? यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य को दृढ़व्रत होने के साथ ही भगवन्नाम का—हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—कीर्तन करना चाहिए, क्योंकि इस तरह वह कृष्ण की कृपा से माया के पाश से निश्चित रूप से छूट जाएगा।

हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन ऐसे पुरुषों के लिए भी संस्तुत किया जाता है, जो अपराध करते हैं, क्योंकि कीर्तन करते रहने से वे क्रमश: निरपराध भाव से कीर्तन करने लगेंगे। निरपराध भाव से हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करने से मनुष्य कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को बढ़ाता है। जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है—*प्रेमा पुमर्थो महान्*—मनुष्य की मुख्य गन्तव्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति अपना लगाव तथा उनके प्रति अपने प्रेम को बढ़ाने की होनी चाहिए।

इस सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर *श्रीमद्भागवत* के निम्नलिखित श्लोक को (११.१९.२४) उद्धृत करते हैं—

एवं धर्मैर्मनुष्याणां उद्धावात्मनि वेदिनाम्।

मयि सञ्जायते भक्ति: कोऽन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते॥

''हे उद्धव! मानव समाज के लिए परम धार्मिक प्रणाली वह है, जिससे मनुष्य मेरे प्रति अपने सुप्त प्रेम को जागृत कर सके।'' इस श्लोक की टीका करते हुए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर भक्ति शब्द का वर्णन *प्रेमैवोक्त:* से करते हैं। *क: अन्य: अर्थ: अस्य*—भक्ति के समक्ष मुक्ति की क्या आवश्यकता है?

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर *पद्मपुराण* का निम्नलिखित श्लोक भी उद्धृत करते हैं—

नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम्।

अविश्रान्तिप्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि च॥

यदि कोई शुरू-शुरू में अपराधपूर्वक भी हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करता है, तो वह बारम्बार कीर्तन करने से ऐसे पापों से मुक्त हो जायेगा। *पापक्षयश्च भवति स्मरतां तमहर्निशम्*—यदि कोई श्री

चैतन्य महाप्रभु की संस्तुति का पालन करते हुए दिन रात कीर्तन करता है, तो वह सारे पापफलों से मुक्त हो जाता है। निम्नलिखित श्लोक को उद्धृत करने वाले श्री चैतन्य महाप्रभु ही थे—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

''कलह तथा पाखण्ड के इस युग में उद्धार का एकमात्र साधन भगवन्नाम का कीर्तन है। इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं, कोई अन्य उपाय नहीं, कोई अन्य उपाय नहीं।'' यदि कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्य श्री चैतन्य महाप्रभु की इस संस्तुति का दृढ़ता से पालन करें तो उनकी स्थिति सदैव सुरक्षित रहे।

प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं
देव्या विमोहितमतिर्बत माययालम् ।
त्रय्यां जडीकृतमतिर्मधुपुष्पितायां
वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः ॥ २५॥

शब्दार्थ

प्रायेण—लगभग सदा; वेद—जानो; तत्—वह; इदम्—यह; न—नहीं; महाजनः—स्वायंभुव मनु, शम्भु तथा इनके अतिरिक्त अन्य महापुरुष; अयम्—यह; देव्या—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्ति द्वारा; विमोहित-मतिः—जिसकी बुद्धि मोहग्रस्त है; बत—निस्सन्देह; मायया—माया द्वारा; अलम्—अत्यधिक; त्रय्याम्—तीन वेदों में; जडी-कृत-मतिः—जिसकी बुद्धि जड़ हो चुकी है; मधु-पुष्पितायाम्—कर्मकाण्ड के फलों का वर्णन करने वाली अलंकारमयी वैदिक भाषा में; वैतानिके—वेदवर्णित अनुष्ठानों में; महति—अति महान्; कर्मणि—सकाम कर्म में; युज्यमानः—लगे हुए।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की माया द्वारा मोहग्रस्त होने के कारण याज्ञवल्क्य, जैमिनि तथा अन्य शास्त्रप्रणेता भी बारह महाजनों की गुह्य धार्मिक प्रणाली को नहीं जान सकते। वे भक्ति करने या हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करने के दिव्य महत्त्व को नहीं समझ सकते। चूँकि उनके मन वेदों—विशेषतया यजुर्वेद, सामवेद तथा ऋग्वेद में उल्लिखित कर्मकाण्डों के प्रति आकृष्ट रहते हैं, इसलिए उनकी बुद्धि जड़ हो गई है। इस तरह वे उन कर्मकाण्डों के लिए सामग्री एकत्र करने में व्यस्त रहते हैं, जो केवल नश्वर लाभ देने वाले हैं—यथा भौतिक सुख के लिए स्वर्गलोक जाना। वे संकीर्तन आन्दोलन के प्रति आकृष्ट नहीं होते बल्कि वे

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष में रुचि लेते हैं।

तात्पर्य : चूँकि मनुष्य भगवान् के कीर्तन द्वारा सरलता से सर्वोच्च सफलता प्राप्त कर सकता है इसलिए कोई प्रश्न कर सकता है कि क्यों इतने वैदिक कर्मकाण्ड हैं और लोग उनके प्रति आकृष्ट क्यों हैं? यह श्लोक इस प्रश्न का उत्तर देता है। जैसा कि *भगवद्गीता* (१५.१५) में कहा गया है—*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य:*—वेदों के अध्ययन का असली उद्देश्य भगवान् कृष्ण के चरणकमलों तक पहुँचना है। दुर्भाग्यवश, मूर्खलोग वैदिक यज्ञों की भव्यता से मोहग्रस्त होकर धूमधाम से यज्ञों को सम्पन्न करना चाहते हैं। वे वैदिक मंत्रों का उच्चारण होते तथा ऐसे उत्सवों में विपुल धनराशि व्यय होते देखना चाहते हैं। कभी-कभी ऐसे मूर्ख लोगों को प्रसन्न करने के लिए हमें वैदिक कर्मकाण्ड करने पड़ते हैं। हाल ही में, जब हमने वृन्दावन में एक विशाल कृष्ण-बलराम मन्दिर की स्थापना की, तो हमें ब्राह्मणों द्वारा वैदिक अनुष्ठान कराने के लिए बाध्य होना पड़ा, क्योंकि वृन्दावन के निवासी, विशेषतया स्मार्त ब्राह्मण यूरोपियनों तथा अमेरिकनों को प्रामाणिक ब्राह्मण स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। अत: हमें खर्चीला यज्ञ सम्पन्न करने के लिए एक ब्राह्मण लगाना पड़ा। इन यज्ञों के बावजूद, हमारे संघ के सदस्यों ने मृदंग के साथ जोर-जोर से *सङ्कीर्तन* किया। मैने *सङ्कीर्तन* को वैदिक कर्मकाण्डों से अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। कर्मकाण्ड और संकीर्तन साथ-साथ चल रहे थे। कर्मकाण्ड उत्सव उन व्यक्तियों के लिए थे, जो स्वर्गलोक जाने के लिए वैदिक अनुष्ठानों में रुचि रखते थे—*जडीकृतमतिर्मधुपुष्पितायाम्* जबकि *सङ्कीर्तन* उन शुद्ध भक्तों के लिए था, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को प्रसन्न करने में रुचि रखते थे। हम तो केवल *सङ्कीर्तन* ही कराते, किन्तु तब वृन्दावन के निवासी स्थापना-उत्सव को गम्भीरता से न लेते। जैसाकि यहाँ पर बताया गया है, वैदिक *कर्मकाण्ड* तो उन लोगों के लिए हैं जिनकी बुद्धि वेदों की अलंकारमयी भाषा से मन्द बन चुकी है, जो उच्चलोक को ले जाने वाले सकाम कर्मों का वर्णन करते हैं।

विशेषतया इस कलियुग में अकेला *सङ्कीर्तन* पर्याप्त है। यदि विश्व के विभिन्न भागों में हमारे

मन्दिरों के सदस्य अर्चाविग्रह के समक्ष, विशेषतया श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष, केवल *सङ्कीर्तन* करते रहें तो वे पूर्ण बने रहेंगे। अन्य किसी कृत्य की आवश्यकता नहीं है। फिर भी, अपनी आदतों को तथा मन को स्वच्छ रखने के लिए अर्चाविग्रह पूजा तथा अन्य विधि-विधानों की आवश्यकता पड़ती है। श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि यद्यपि जीवन की पूर्णता के लिए *सङ्कीर्तन* पर्याप्त है, किन्तु *अर्चना* अर्थात् मन्दिर में अर्चाविग्रह पूजा को करते रहना चाहिए जिससे भक्तगण स्वच्छ तथा शुद्ध रहें। इसलिए श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने दोनों ही विधियों को एकसाथ सम्पन्न किये जाने की संस्तुति की है। हम अर्चाविग्रह पूजा तथा *सङ्कीर्तन* को समानान्तर चलाने के सिद्धान्त का कठोरता से पालन करते हैं। इसे हमें करते रहना चाहिए।

एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनन्ते
सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम् ।
ते मे न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यमीषां
स्यात्पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; विमृश्य—विचार करके; सु-धियः—वे जिनकी बुद्धि प्रखर है; भगवति—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में; अनन्ते—असीम; सर्व-आत्मना—प्राणप्रण से; विदधते—ग्रहण करते हैं; खलु—निस्सन्देह; भाव-योगम्—भक्तिमय सेवा की विधि; ते—ऐसे लोग; मे—मेरा; न—नहीं; दण्डम्—दण्ड के; अर्हन्ति—योग्य हैं; अथ—इसलिए; यदि—यदि; अमीषाम्—उनका; स्यात्—है; पातकम्—कोई पाप कर्म; तत्—वह; अपि—भी; हन्ति—नष्ट करता है; उरुगाय-वादः—परमेश्वर के नाम का कीर्तन ।.

अतः इन सभी बातों पर विचार करते हुए बुद्धिमान लोग हर एक के हृदय में स्थित तथा समस्त शुभ गुणों की खान भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन की भक्ति को अपनाकर सारी समस्याओं को हल करने का निर्णय करते हैं। ऐसे लोग दण्ड देने के मेरे अधिकार क्षेत्र में नहीं आते। सामान्यतया वे कभी कोई पापकर्म नहीं करते, किन्तु यदि वे भूलवश या मोहवश कभी कोई पापकर्म करते भी हैं, तो वे पापफलों से बचा लिये जाते हैं, क्योंकि वे सदैव हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करते हैं।

तात्पर्य : इस सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करते हैं,

जो ब्रह्मा द्वारा की गई स्तुतियों में से है (*भागवत* १०.१४.२९)—

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय प्रसादलेशानुगृहीत एव हि।

जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य रूकोऽपि चिरंए विचिन्वन्॥

तात्पर्य यह है कि वैदिक शास्त्र का अत्यन्त प्रकाण्ड पंडित तक पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अस्तित्त्व तथा उनके नाम, यश, गुण इत्यादि से पूरी तरह अनजान हो सकता है, जबकि कोई-कोई विद्वान न होते हुए भी भगवान् की स्थिति को समझ सकता है, यदि वह किसी तरह भक्ति में लगकर भगवान् का शुद्ध भक्त बन जाता है। इसीलिए यमराज द्वारा कहा गया यह श्लोक कहता है—*एवं विमृश्य सुधियो भगवति*—जो लोग भगवान् की प्रेमाभक्ति करते हैं, वे *सुधियः* अर्थात् बुद्धिमान बन जाते हैं, किन्तु वैदिक पंडित के साथ ऐसा नहीं होता, क्योंकि वह कृष्ण के नाम, यश तथा गुणों को नहीं समझता। शुद्ध भक्त वह है, जिसकी बुद्धि विमल होती है। वह सचमुच विचारवान् होता है, क्योंकि वह भगवान् की सेवा में किसी दिखावे के लिए नहीं, अपितु प्रेम से, मन, वचन तथा शरीर से लगा रहता है। अभक्तगण धर्म का दिखावा कर सकते हैं, किन्तु यह अधिक प्रभावशाली नहीं होता, क्योंकि वे दिखावे के लिए मन्दिर या गिरजाघर में जाते हैं, किन्तु सोचते कुछ और हैं। ऐसे व्यक्ति अपने धार्मिक कर्तव्य की उपेक्षा करते हैं और यमराज द्वारा दण्डनीय होते हैं। किन्तु यदि कोई भक्त अपनी पुरानी आदतों के कारण अनिच्छा से या संयोगवश पापकर्म करता है, तो उसे क्षमा कर दिया जाता है। *सङ्कीर्तन* आन्दोलन की यही महत्ता है।

ते देवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा
ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः ।
तान्नोपसीदत हरेर्गदयाभिगुप्तान्
नैषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे ॥ २७॥

शब्दार्थ

ते—वे; देव—देवताओं; सिद्ध—तथा सिद्धलोक के वासियों द्वारा; परिगीत—गाई गयी; पवित्र-गाथाः—शुद्ध कथाएँ; ये—जो; साधवः—भक्तजन; समदृशः—समानदर्शी; भगवत्-प्रपन्नाः—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरणागत; तान्—उनको; न—नहीं; उपसीदत—पास जाना चाहिए; हरेः—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के; गदया—गदा से; अभिगुप्तान्—पूरी

तरह सुरक्षित; न—नहीं; एषाम्—इनका; वयम्—हम; न च—तथा नहीं; वय:—असीम काल; प्रभवाम—समर्थ हैं; दण्डे—दण्ड देने में।

मेरे प्रिय सेवको! ऐसे भक्तों के पास मत जाना, क्योंकि वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरणकमलों में पूरी तरह शरणागत हो चुके होते हैं। वे समदर्शी होते हैं और उनकी गाथाएँ देवताओं तथा सिद्धलोक के निवासियों द्वारा गाई जाती हैं। तुम लोग उनके निकट भी मत जाना। वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की गदा द्वारा सदैव रक्षित रहते हैं, इसलिए ब्रह्मा तथा मैं और काल भी उन्हें दण्ड देने में समर्थ नहीं हैं।

तात्पर्य : वस्तुत: यमराज ने अपने सेवकों को आगाह किया, "मेरे प्रिय सेवको! इसके पूर्व भक्तों को तंग करने के लिए तुम चाहे जो भी करते रहे हो, किन्तु अब उसे बन्द कर दो। जिन भक्तों ने भगवान् के चरणकमलों में शरण ले रखी है तथा जो भगवन्नाम का निरन्तर कीर्तन करते हैं उनकी प्रशंसा देवता तथा सिद्धलोक के वासी तक करते हैं। वे भक्त इतने सम्माननीय तथा उच्च हैं कि भगवान् विष्णु उनकी रक्षा स्वयं अपने हाथ में गदा लेकर करते हैं। अत: इस बार जो तुमने किया है उसकी उपेक्षा करते हुए आगे से कभी भी तुम ऐसे भक्त के पास मत जाना, अन्यथा तुम्हें भगवान् विष्णु की गदा द्वारा मार दिया जाएगा। अतएव यह मेरी चेतावनी है। भगवान् विष्णु अभक्तों को गदा तथा चक्र से दण्ड देते हैं। तुम लोग भक्तों के साथ छेड़छाड़ करके दण्ड का खतरा मत मोल लो। तुम्हीं नहीं, यदि ब्रह्मा को या मुझे भी उन्हें दण्ड देना हो तो भगवान् विष्णु हमें ही दण्ड देंगे। इसलिए अब इसके बाद भक्तों को कभी तंग मत करना।"

तानानयध्वमसतो विमुखान्मुकुन्द-
पादारविन्दमकरन्दरसादजस्त्रम् ।
निष्किञ्चनै: परमहंसकुलैरसङ्गै-
र्जुष्टाद्गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

तान्—उनको; आनयध्वम्—मेरे सामने लाओ; असत:—अभक्त (जिन्होंने कृष्णभावनामृत नहीं स्वीकार किया); विमुखान्—जो विमुख हैं; मुकुन्द—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मुकुन्द के; पाद-अरविन्द—चरणकमलों के; मकरन्द—मधु से; रसात्—स्वाद से; अजस्त्रम्—निरन्तर; निष्किञ्चनै:—भौतिक आसक्ति से पूर्णतया मुक्त पुरुषों द्वारा; परमहंस-कुलै:—

परम सम्मानित व्यक्ति परमहंसों द्वारा; असङ्गैः—भौतिक आसक्ति से रहित; जुष्टात्—जो भोगा जाता है, भोग्य; गृहे—गृहस्थ जीवन में; निरय-वर्त्मनि—नरक ले जाने का रास्ता; बद्ध-तृष्णान्—जिनकी इच्छाएँ बद्ध हैं।

परमहंस सम्माननीय पुरुष होते हैं, जिन्हें भौतिक भोग में कोई रुचि नहीं है तथा जो भगवान् के चरणकमलों का मधु-पान करते हैं। मेरे सेवको! मेरे पास ऐसे व्यक्तियों को ही दण्डित किये जाने के लिए लाओ जो उस मधु के आस्वादन से विमुख हैं, जो परमहंसों की संगति नहीं करते तथा जो गृहस्थ जीवन एवं सांसारिक भोग में लिप्त हैं, क्योंकि ये नरक ले जाने वाले रास्ते हैं।

तात्पर्य : यमदूतों को यह चेतावनी देने के बाद कि वे भक्तों के पास नहीं जायें, अब यमराज यह बताते हैं कि किन लोगों को उनके समक्ष लाया जाये। वे यमदूतों को विशेषरूप से सलाह देते हैं कि वे ऐसे भौतिकतावादी व्यक्तियों को लायें जो मात्र संभोग के लिए गृहस्थ जीवन में लिप्त रहते हैं। जैसा *श्रीमद्भागवत* में कहा गया है—*यन्मैथुनादिगृहमेधिसुखं हि तुच्छम्*—लोग केवल संभोग के लिए गृहस्थ जीवन में लिप्त रहते हैं। वे अपने भौतिक कार्यकलापों द्वारा अनेक प्रकार से सदैव सताये जाते हैं और उनका एकमात्र सुख सारे दिन कठिन श्रम करने, रात में सोने तथा संभोग करने में निहित रहता है। *निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः*—भौतिकतावादी गृहस्थ रात में या तो सोते हैं या संभोग में रत रहते हैं। *दिवा चार्थेहया राजन् कुटुम्बभरणेन वा*—दिन के समय वे धन की खोज में रहते हैं और यदि धन मिल गया तो उसे अपने परिवारों के भरण-पोषण में खर्च करते हैं। यमराज अपने सेवकों को विशेषरूप से मंत्रणा देते हैं, वे उन भक्तों को नहीं लाएँ जो सदैव भगवान् के चरणकमलों का मधुपान करते रहते हैं, जो समदर्शी हैं और सारे जीवों पर सहानुभूति के कारण कृष्णभावनामृत का प्रचार करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। भक्तगण यमराज द्वारा दण्डनीय नहीं हैं, किन्तु जिन लोगों को कृष्णभावनामृत की कोई जानकारी नहीं रहती उन्हें उनके तथाकथित पारिवारिक भोग के भौतिक जीवन से नहीं बचाया जा सकता। *श्रीमद्भागवत* (२.१.४) में कहा गया है—

देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि ।

तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति॥

आत्मतृप्ति के लिए ऐसे लोग विश्वास करते हैं कि उनके राष्ट्र, समुदाय या परिवार उन्हें बचा लेंगे। वे इस बात से अचेत रहते हैं कि ऐसी गलती करने वाले सैनिकों को कालक्रम में विनष्ट कर दिया जायेगा। निष्कर्षत: मनुष्य को चाहिए कि ऐसे लोगों की संगति करे जो चौबीसों घण्टे भक्ति में लगे रहते हैं।

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥ २९॥

शब्दार्थ

जिह्वा—जीभ; न—नहीं; वक्ति—कीर्तन करती है; भगवत्—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के; गुण—अलौकिक गुण; नाम—तथा पवित्र नाम का; धेयम्—प्रदान करते हुए; चेत:—हृदय; च—भी; न—नहीं; स्मरति—स्मरण करता है; तत्—उसके; चरण-अरविन्दम्—चरणकमलों को; कृष्णाय—भगवान् कृष्ण को, मन्दिर में उनके अर्चाविग्रह के माध्यम से; नो—नहीं; नमति—झुकता है; यत्—जिसका; शिर:—सिर; एकदा अपि—एक बार भी; तान्—उनको; आनयध्वम्—मेरे समक्ष ले आओ; असत:—अभक्तों को; अकृत—न करने वाले; विष्णु-कृत्यान्—भगवान् विष्णु के प्रति कर्तव्य।

हे मेरे प्यारे सेवको! तुम लोग केवल उन्हीं पापी पुरुषों को मेरे पास लाना जिनकी जीभ कृष्ण के नाम तथा गुणों का कीर्तन नहीं करती, जिनके हृदय कृष्ण के चरणकमलों का एक बार भी स्मरण नहीं करते तथा जिनके सिर एक बार भी कृष्ण के समक्ष नहीं झुकते। मेरे पास उन लोगों को भेजना जो विष्णु के प्रति अपने उन कर्तव्यों को पूरा नहीं करते जो मानव जीवन के एकमात्र कर्तव्य हैं। ऐसे सभी मूर्खों तथा धूर्तों को मेरे पास लाना।

तात्पर्य : इस श्लोक में *विष्णु-कृत्यान्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि मनुष्य जीवन का उद्देश्य भगवान् विष्णु को प्रसन्न करना है। वर्णाश्रम धर्म भी इसी प्रयोजन के लिए है। जैसाकि *विष्णु पुराण* (३.८.९) में कहा गया है—

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण पर: पुमान्।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत् तत्तोषकारणम्॥

मानव-समाज इसलिए है कि वह कठोरतापूर्वक उस वर्णाश्रम धर्म का पालन करे जो समाज को चार सामाजिक विभागों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) और चार आध्यात्मिक विभागों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) में विभक्त करता हैं। वर्णाश्रम धर्म मनुष्य को भगवान् विष्णु के निकटतर लाता है, जो कि मानव-समाज का एकमात्र असली लक्ष्य है। *न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्*—किन्तु दुर्भाग्यवश लोग यह नहीं जानते कि उनका स्वार्थ भगवद्धाम वापस जाने में या भगवान् विष्णु के पास पहुँचने में है। *दुराशया ये बहिरर्थमानिनः*—विपरीत इसके, वे केवल मोहग्रस्त रहते हैं। हर मनुष्य से आशा की जाती है कि भगवान् विष्णु के पास पहुँचने के लिए कर्तव्य करे। अतएव यमराज यमदूतों को परामर्श देते हैं कि वे उन्हीं लोगों को उनके पास लायें जिन्होंने भगवान् विष्णु के प्रति अपने कर्तव्य भुला दिये हैं (*अकृतविष्णुकृत्यान्*)। जो विष्णु (कृष्ण) के पवित्र नाम का कीर्तन नहीं करता, जो विष्णु के अर्चाविग्रह को शीश नहीं झुकाता तथा जो भगवान् विष्णु के चरणकमलों का स्मरण नहीं करता, वह यमराज द्वारा दण्डनीय है। संक्षेप में, सारे अवैष्णव यमराज द्वारा दण्डनीय हैं।

तत्क्षम्यतां स भगवान्पुरुषः पुराणो
नारायणः स्वपुरुषैर्यदसत्कृतं नः ।
स्वानामहो न विदुषां रचिताञ्जलीनां
क्षान्तिर्गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; क्षम्यताम्—क्षमा करने योग्य; सः—वह; भगवान्—परम पुरुषोत्तम भगवान्; पुरुषः—परम पुरुषोत्तम; पुराणः—सबसे प्राचीन; नारायणः—नारायण; स्व-पुरुषैः—अपने सेवकों द्वारा; यत्—जो; असत्—ढिठाई; कृतम्—सम्पन्न; नः—हमारा; स्वानाम्—हमारे ही लोगों का; अहो—हाय; न विदुषाम्—न जानते हुए; रचित-अञ्जलीनाम्—आपसे क्षमा माँगने के लिए हाथ जोड़े हुए; क्षान्तिः—क्षमाशीलता; गरीयसि—महिमामयी है; नमः—नमस्कार; पुरुषाय—पुरुष को; भूम्ने—परम तथा सर्वव्यापक।

[तब यमराज स्वयं को तथा अपने सेवकों को अपराधी मानते हुए, भगवान् से क्षमायाचना करते हुए इस प्रकार बोले] हे प्रभु! मेरे सेवकों ने निश्चित रूप से अजामिल जैसे वैष्णव को बन्दी बनाकर महान् अपराध किया है। हे नारायण, हे परम एवं पुरातन

पुरुषोत्तम! आप हमें क्षमा कर दें। अपने अज्ञान के कारण हम अजामिल को आपके सेवक के रूप में नहीं पहचान सके और इस तरह हमने निश्चित रूप से महान् अपराध किया है। अतएव हम हाथ जोड़ कर आपसे क्षमा माँगते हैं। हे प्रभु! आप अत्यन्त दयालु हैं और सद्गुणों से सदैव पूर्ण रहते हैं। कृपया हमें क्षमा कर दें। हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : यमराज ने अपने सेवकों द्वारा किये गये अपराध का भार अपने ऊपर ले लिया। यदि किसी प्रतिष्ठान का कोई सेवक कोई गलती करता है, तो प्रतिष्ठान उसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता है। यद्यपि यमराज अपराधों से ऊपर हैं, किन्तु व्यवहारत: उनकी अनुमति से ही उनके सेवक अजामिल को बन्दी बनाने गये थे, जो कि महान् अपराध था। न्यायशास्त्र पुष्टि करता है *भृत्यापराधे स्वामिनो दण्ड:*—यदि सेवक कोई गलती करता है, तो स्वामी दंडनीय होता है, क्योंकि अपराध के लिए वही उत्तरदायी होता है। इस बात को गम्भीरता से लेते हुए यमराज ने अपने सेवकों सहित हाथ जोड़कर परम पुरुषोत्तम भगवान् नारायण से क्षमा करने के लिए प्रार्थना की।

तस्मात्सङ्कीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम् ।
महतामपि कौरव्य विद्ध्येकान्तिकनिष्कृतम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; सङ्कीर्तनम्—पवित्र नाम का सामूहिक कीर्तन; विष्णो:—भगवान् विष्णु के; जगत्-मङ्गलम्—इस भौतिक जगत के भीतर सर्वाधिक शुभ कार्य; अंहसाम्—पापकर्मों के लिए; महताम् अपि—महान् होते हुए भी; कौरव्य—हे कुरुवंश के वंशज; विद्धि—समझो; ऐकान्तिक—चरम; निष्कृतम्—प्रायश्चित्त।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्! भगवन्नाम का कीर्तन बड़े से बड़े पापों के फलों को भी उन्मूलित करने में सक्षम है। इसलिए *सङ्कीर्तन* आन्दोलन का कीर्तन सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सबसे शुभ कार्य है। कृपया इसे समझने का प्रयास करें जिससे अन्य लोग इसे गम्भीरतापूर्वक ग्रहण कर सकें।

तात्पर्य : हमें ध्यान देना चाहिए कि यद्यपि अजामिल ने नारायण के नाम का अधूरे रूप में

उच्चारण किया था, किन्तु सारे पापफलों से उसका उद्धार हो गया। पवित्रनाम का कीर्तन इतना मंगलप्रद है कि यह हर एक को पापकर्मों के फलों से मुक्त कर सकता हैं। किन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि कोई व्यक्ति पाप के फलों का निराकरण करने के लिए हरे कृष्ण कीर्तन करके पाप करता रह सकता है। प्रत्युत उसे समस्त पापों से रहित होने के लिए सावधान रहना चाहिए और हरे कृष्ण मंत्र के कीर्तन द्वारा पापकर्मों का निवारण हो जायेगा, यह कभी सोचना भी नहीं चाहिए, क्योंकि वह दूसरा अपराध है। यदि संयोगवश किसी भक्त से कोई पापकर्म हो जाता है, तो भगवान् उसे क्षमा कर देंगे, किन्तु मनुष्य को जानबूझकर पापकर्म नहीं करना चाहिए।

श्रृण्वतां गृणतां वीर्याण्युद्दामानि हरेर्मुहुः ।
यथा सुजातया भक्त्या शुद्ध्येन्नात्मा व्रतादिभिः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

श्रृण्वताम्—सुनने वालों; गृणताम्—तथा कीर्तन करने वालों के; वीर्याणि—अद्भुत कार्य; उद्दामानि—पाप का निवारण करने में सक्षम; हरेः—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के; मुहुः—सदैव; यथा—जिस प्रकार; सु-जातया—आसानी से समक्ष लाया गया; भक्त्या—भक्ति द्वारा; शुद्ध्येत्—शुद्ध किया जा सकता है; न—नहीं; आत्मा—हृदय तथा आत्मा; व्रत-आदिभिः—कर्मकाण्ड करने से।

जो व्यक्ति भगवन्नाम का निरन्तर श्रवण तथा कीर्तन करता है और भगवान् के कार्यों का श्रवण तथा कीर्तन करता है, वह बहुत ही आसानी से शुद्ध भक्ति पद को प्राप्त कर सकता है, जो उसके हृदय के मैल को शुद्ध करने वाला है। केवल व्रत रखने तथा वैदिक कर्मकाण्ड करने से ऐसी शुद्धि प्राप्त नहीं की जा सकती।

तात्पर्य : मनुष्य भगवन्नाम के कीर्तन तथा श्रवण का अभ्यास आसानी से कर सकता है और इस तरह आध्यात्मिक जीवन में भावविभोर बन सकता है। *पद्मपुराण* का कथन है—

नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम् ।

अविश्रान्तिप्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि च ॥

यदि कोई व्यक्ति हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन अपराध सहित भी करता है, तो वह अविचल

भाव से निरन्तर कीर्तन करते हुए अपराधों से बच सकता है। जो इसका अभ्यस्त हो जाता है, वह सदा शुद्ध दिव्य पद पर रहेगा जो पापफलों से अस्पृश्य है। शुकदेव गोस्वामी ने राजा परीक्षित से विशेष अनुरोध किया कि इस तथ्य को सावधानी से अंकित कर लें। किन्तु वैदिक कर्मकाण्डों को करने से कोई लाभ नहीं होता। ऐसे कार्य करने से मनुष्य उच्चतर लोकों को जा सकता है, किन्तु जैसा कि *भगवद्गीता* (९.२१) में कहा गया है—*क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति*—जब स्वर्गलोक में मनुष्य के भोग की अवधि समाप्त हो जाती है, क्योंकि उसके पुण्य कर्म सीमित होते हैं, तो उसे पृथ्वी पर लौटना होता है। इस तरह ब्रह्माण्ड में ऊपर-नीचे भ्रमण करते रहने का प्रयास करने से कोई लाभ नहीं है। इससे अच्छा तो भगवन्नाम का कीर्तन करना है, जिससे वह पूर्णतया शुद्ध हो सके और भगवद्धाम लौटने का पात्र बन सके। यही जीवन का उद्देश्य है और यही जीवन की सिद्धि है।

कृष्णाङ्घ्रिपद्ममधुलिण्ण पुनर्विसृष्ट-
मायागुणेषु रमते वृजिनावहेषु ।
अन्यस्तु कामहत आत्मरजः प्रमार्ष्टु-
मीहेत कर्म यत एव रजः पुनः स्यात् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण-अङ्घ्रि-पद्म—कृष्ण के चरणकमलों का; मधु—शहद; लिट्—चाटने वाला; न—नहीं; पुनः—फिर; विसृष्ट—पहले से विरक्त; माया-गुणेषु—प्रकृति के भौतिक गुणों में; रमते—आनन्द लेना चाहता है; वृजिन-अवहेषु—दुखदायी; अन्यः—दूसरा; तु—फिर भी; काम-हतः—काम द्वारा विमोहित; आत्म-रजः—हृदय की पापपूर्ण छूत; प्रमार्ष्टुम्—स्वच्छ करने के लिए; ईहेत—सम्पन्न करता है; कर्म—कार्य; यतः—जिसके बाद; एव—निस्सन्देह; रजः—पापपूर्ण कर्म; पुनः—फिर; स्यात्—प्रकट होते हैं।

जो भक्तगण भगवान् कृष्ण के चरणकमलों के मधु को जो भक्तगण सदैव चाटते रहते हैं, वे उन भौतिक कर्मों की तनिक भी चिन्ता नहीं करते जो प्रकृति के तीन गुणों के अधीन सम्पन्न किये जाते हैं और जो केवल दुःखदायी होते हैं। दरअसल, भौतिक कर्मों में वापस आने के लिए भक्तगण कभी भी कृष्ण के चरणकमलों को नहीं छोड़ते। किन्तु अन्य लोग, जो भगवान् के चरणकमलों की सेवा की उपेक्षा करने तथा कामेच्छाओं से विमोहित होने से

वैदिक कर्मकाण्डों में लिप्त रहते हैं, कभी-कभी प्रायश्चित्त के कर्म करते हैं। फिर भी अपूर्णरूप से शुद्ध होने से वे पुनः-पुनः पापकर्मों में लौट आते हैं।

तात्पर्य : भक्त का कर्तव्य है कि हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करे। वह कभी अपराध सहित और कभी अपराधरहित होकर कीर्तन कर सकता है, किन्तु यदि वह इस विधि को गम्भीरता के साथ अपनाता है, तो उसे वह सिद्धि प्राप्त होगी जो प्रायश्चित्त के वैदिक कर्मकाण्डों द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती। जो लोग वैदिक कर्मकाण्ड के प्रति आसक्त हैं, किन्तु भक्ति में विश्वास नहीं करते, जो प्रायश्चित्त का परामर्श देते हैं, किन्तु भगवन्नाम के कीर्तन की प्रशंसा नहीं करते वे सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करने से वञ्चित रहते हैं। इसलिए भक्तगण भौतिक भोग से पूर्णतया विरक्त रहकर कभी भी वैदिक कर्मकाण्ड के पक्ष में कृष्णभावनामृत का परित्याग नहीं करते। जो लोग कामवासनाओं के कारण वैदिक कर्मकाण्ड के प्रति आसक्त रहते हैं उन्हें बारम्बार भौतिक जगत के कष्ट उठाने पड़ते हैं। महाराज परीक्षित ने उनके कर्मों की तुलना *कुञ्जर-शौच* अर्थात् हाथी के स्नान करने से की है।

इत्थं स्वभर्तृगदितं भगवन्महित्वं
संस्मृत्य विस्मितधियो यमकिङ्करास्ते ।
नैवाच्युताश्रयजनं प्रतिशङ्कमाना
द्रष्टुं च बिभ्यति ततः प्रभृति स्म राजन् ॥ ३४॥

शब्दार्थ

इत्थम्—ऐसी शक्ति का; स्व-भर्तृ-गदितम्—अपने स्वामी (यमराज) द्वारा बतलाया गया; भगवत्-महित्वम्—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनके नाम, यश, रूप तथा गुणों की अद्वितीय महिमा; संस्मृत्य—स्मरण करके; विस्मित-धियः—जिनके मन विस्मित; यम-किङ्कराः—यमराज के सारे सेवक; ते—वे; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; अच्युत-आश्रय-जनम्—अच्युत अर्थात् कृष्ण के चरणकमलों पर शरण प्राप्त व्यक्ति; प्रतिशङ्कमानाः—सदैव भयभीत; द्रष्टुम्—देखने के लिए; च—तथा; बिभ्यति—भयभीत हैं; ततः प्रभृति—तब से प्रारम्भ करके; स्म—निस्सन्देह; राजन्—हे राजन्।.

अपने स्वामी के मुख से भगवान् की अद्वितीय महिमा तथा उनके नाम, यश तथा गुणों के विषय में सुनकर यमदूत आश्चर्यचकित रह गये। तब से, जैसे ही वे किसी भक्त को देखते हैं, तो वे उससे डरते हैं और उसकी ओर फिर से देखने का साहस नहीं करते।

तात्पर्य : इस घटना के बाद से यमदूतों ने भक्तों के पास जाने की विपत्ति-जनक आदत त्याग

दी है। यमदूतों के लिए भक्त विपत्ति-जनक होता है।

इतिहासमिमं गुह्यं भगवान्कुम्भसम्भवः ।
कथयामास मलय आसीनो हरिमर्चयन् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

इतिहासम्—इतिहास; इमम्—यह; गुह्यम्—अत्यन्त गोपनीय; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; कुम्भ-सम्भवः—अगस्त्य मुनि, कुम्भ के पुत्र; कथयाम् आस—बतलाया; मलये—मलय पर्वत में; आसीनः—निवास करते हुए; हरिम् अर्चयन्—भगवान् की पूजा करते हुए।

जब कुम्भ के पुत्र अगस्त्य मुनि मलय पर्वत पर निवास कर रहे थे और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा कर रहे थे तो मैं उनके पास गया और उन्होंने मुझे यह गुह्य इतिहास बतलाया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध के अन्तर्गत ''यमराज द्वारा अपने दूतों को शिक्षा'' नामक तृतीय अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।